Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# मीराँबाई

## ( जीवन-चरित और आलोचना )

लेखक
डाक्टर श्रीकृष्ण लाल, एम० ए०, डी० फिल्०,
अध्यापक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

२००७
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# मीराँबाई

## ( जीवन-चरित और आलोचना )

लेखक

डाक्टर श्रीकृष्ण लाल, एम० ए०, डी० फिल्०,

प्राध्यापक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

२००७

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वितीय संस्करण ३००० मूल्य १॥)

मुद्रक व प्रकाशक—रामप्रताप शास्त्री, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रया॰

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'मीराँबाई' के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का द्वितीय प्रकाशन है। इससे पूर्व श्री परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'मीराँबाई की पदावली' नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। 'मीराँबाई' की भक्ति ने हिन्दी साहित्य को किस प्रकार रस-सिक्त किया है, यह साहित्यानुरागियों से अविदित नहीं है। यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है १. जीवन-चरित, २. आलोचना। प्रथम खण्ड में मीराँबाई के जीवन के सम्बन्ध में अनुसन्धानपूर्वक अनेक ज्ञातव्य बातों का परिचय कराया गया है और दूसरे खंड में मीराँबाई की रचनाओं के साथ भक्तियुग में मीराँ उसकी प्रेम-साधना और उसकी काव्य-कला के सम्बन्ध में परिमार्जित समीक्षा देकर हमारे विद्वान् लेखक श्री डा० श्रीकृष्णलाल एम. ए., डी. फिल्. ने इस अभक्तियुग, इसीलिए अकल्याणमय काल में प्राचीन भक्ति परम्परा का स्मरण कराया है।

पुस्तक की उपादेयता तो विज्ञ पाठकों की सम्मति पर ही निर्भर है। किन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि सम्मेलन की मध्यमा और उत्तमा परीक्षा के परीक्षार्थियों के ज्ञान-वर्द्धन में यह पुस्तक परम सहायक होगी।

गुरु पूर्णिमा
२००६

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्य मंत्री

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वर्गीया स्नेहमयी जननी

की पुण्य स्मृति में—

श्रीकृष्ण लाल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# जीवनी खंड

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# दो शब्द

'मीराँबाई के प्रणयन का कार्य सन् १९४३ में ही गुरुवर डा० रामकुमार वर्मा के सुझाव से प्रारम्भ हो गया था, परंतु बीच-बीच में कितनी ही बाधाओं के कारण, कई वर्षों बाद यह प्रकाशित हो रहा है। इन पाँच-छः वर्षों में मुझे न जाने कितनी प्रेरणाएँ, कितने परामर्श और कितनी सहायता प्राप्त हुई, उन सबका उल्लेख आवश्यक नहीं है, फिर भी अपने हृदय का भार हलका करने के विचार से दो एक शब्द लिख देना अनुचित नहीं जान पड़ता। मेरे श्रद्धास्पद आचार्य डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने समय-समय पर जो प्रोत्साहन और अमूल्य परामर्श दिए, उनके बिना सम्भवतः इस ग्रंथ की रचना ही न हो पाती। उनकी कृपा और स्नेह का मैं इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि उसके लिए आभार-प्रदर्शन सम्भव नहीं जान पड़ता। सुहृद्वर डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपना अमूल्य समय दे पांडुलिपि को भली भाँति पढ़कर कुछ सुझाव दिए थे जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री नरेशकुमार मेहता, एम० ए०, ने 'वृहत् काव्य दोहन' के गुजराती अक्षरों में छपे मीराँ के पदों की प्रतिलिपि नागरी अक्षरों में कर मेरी सहायता की जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन-जिन लेखकों की कृतियों से इस ग्रंथ के प्रणयन में सहायता ली गई है, उसका मैं आभारी हूँ। अंत में मैं अपने प्रिय मित्र श्री प्रभात शास्त्री, साहित्याचार्य और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के साहित्य मंत्री श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' को अनेक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इसके प्रकाशन की व्यवस्था की।

दुर्गाकुंड, काशी

श्रीकृष्ण लाल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# विषय-सूची

## प्रथम खंड

### ( जीवन-चरित )


विषय

| | | | |
|---|---|---|---|
| पहला अध्याय—प्रवेश | ... | ... | ३ |
| दूसरा अध्याय—आधार और सामग्री | ... | ... | ८ |
| तीसरा अध्याय—मीराँबाई की जीवन सम्बंधी तिथियाँ | | ... | ५५ |
| चौथा अध्याय—संस्कार और दीक्षा | ... | ... | ६२ |
| पाँचवाँ अध्याय—जीवन वृत्त | ... | ... | ६८ |
| उपसंहार ... ... | ... | ... | ७४ |


## द्वितीय खंड

### ( रचनाएँ तथा आलोचना )


| | | | |
|---|---|---|---|
| पहला अध्याय—मीराँबाई की रचनाएँ | ... | ... | ७९ |
| दूसरा अध्याय—भक्ति-युग और मीराँ | ... | ... | ८३ |
| तीसरा अध्याय—मीराँ का काव्य-विषय—भक्ति | | ... | १२३ |
| चौथा अध्याय—मीरा की प्रेम-साधना | ... | ... | १४८ |
| पाँचवाँ अध्याय—मीराँ की काव्य-कला | ... | ... | १६४ |
| उपसंहार ... ... | ... | ... | १७६ |


For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# पहला अध्याय

## प्रवेश

१

विक्रम की पंद्रहवीं, सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में भक्तिधर्म की प्रधानता थी। कितनी ही दृष्टियों से इस भक्तियुग का विशेष महत्व है और इस महत्वपूर्ण युग में भी मीराँबाई का विशिष्ट स्थान है। यह राजपूतों की वीरता का युग था—महाराणा सांगा और प्रताप, वीरश्रेष्ठ जयमल और पुत्ता, राव जोधा जी और मालदेव जैसे मालधनी वीरों की कीर्ति से सारा राजपूताना गूंज रहा था—और मीराँ इस युग के रणबांकुरे राठौर राव जोधा जी की प्रपौत्री, वीर जयमल की बहिन तथा सीसोदियों के सूर्य महाराणा सांगा की ज्येष्ठ पुत्रवधू थी; यह कबीर, दादू, नानक, रैदास तथा नरसी मेहता जैसे ईश्वरपरायण भक्तों का युग था और मीराँ एक महान भक्त थी; यह एक अवतारी युग था जब गोसाईं तुलसीदास आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के, गौरांग महाप्रभु श्री चैतन्यदेव भगवान कृष्ण के, महात्मा हरिदास श्री ललिता सखी के और गोसाईं हित हरिवंश भगवान मुरलीधर की मुरली के अवतार समझे जाते थे और मीराँ द्वापर युग की व्रजगोपी की अवतार प्रसिद्ध थीं; यह हरिदास, तानसेन, बैजू बावरे तथा सूरदास जैसे गायकों का युग था और मीराँबाई एक अलौकिक गायिका थीं; यह सूरदास, तुलसीदास, विद्यापति तथा कबीर जैसे महाकवियों का युग था और मीराँ एक जन्मजात कवि थीं। सारांश यह कि मीराँबाई इस युग का गौरव बढ़ाने वाला एक महान् आत्मा थीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



## २

आलवारों के पावन कंठ से निकली हुई भक्ति-धारा श्री रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी और निम्बार्क जैसे आचार्यों की प्रतिभा-सरस्वती के संयोग में एक बाढ़-सी उमड़ कर दक्षिण भारत को रसमय करती हुई उत्तर की ओर बढ़ी और कुछ ही समय में बंगाल और मध्यदेश भी इस भक्ति-धारा के प्रवाह से रसमय हो उठा। काशी में स्वामी रामानंद अपनी द्वादश शिष्य-मंडली के साथ 'जात-पाँत पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को होई।' का प्रचार कर रहे थे और पावन-भूमि ब्रज में एक ओर महाप्रभु वल्लभाचार्य अपने शिष्यों के साथ बाल-गोपाल-भक्ति का प्रसार कर रहे थे, दूसरी ओर चैतन्यदेव के प्रिय शिष्य रूप, सनातन और जीव गोस्वामी माधुर्य-भाव की भक्ति-भावना से रस की धारा बहा रहे थे। दैवयोग से यह समय भी भक्ति-धर्म के प्रसार में विशेष सहायक प्रमाणित हुआ—विजेता यवनों से पददलित और पीड़ित निराश हिन्दू जनता के लिये ईश्वर की भक्ति के अतिरिक्त और चारा ही क्या था? परन्तु यह भक्ति-धारा राजपूताने की मरुभूमि में अपना मार्ग खोजने में असमर्थ थी। वहाँ अब भी तलवार के पानी और रक्त के रंग की होली खेली जाती थी, वहाँ अब भी मुंडमाली को मुंडमाल चढ़ाया जाता था। राम और कृष्ण के स्थान पर वहाँ भाले और बर्छी की पूजा होती थी; सरयू और यमुना के स्थान पर वहाँ के वीर पुजारी 'शोणित के स्रोत' में स्नान कर अपना जीवन कृतार्थ करते थे और 'सुने रे निर्बल के बल राम' के स्थान पर वहाँ

तन तलवारों तिलछियो, तिल तिल ऊपर सीव।
आलाँ बावाँ ऊठसी, छिन इक ठहर नकीब॥[1]

के गीत गाये जाते थे। सच तो यह है कि भक्ति-धर्म की अग्नि-परीक्षा के लिये राजस्थान की मरुभूमि ने जौहर की आग जला रक्खी थी। परंतु यह

१ इस वीर का शरीर तलवार के घावों से टुकड़े टुकड़े हो गया है और तिल तिल पर सिला हुआ है। हे चारण। तुम थोड़ी देर के लिए अपनी वीर वाणी बंद करो, नहीं तो यह वीर गीले घावों से उठ कर अभी फिर रण के लिये चला जायगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आग जहाँ प्रचंडतम रूप से प्रज्वलित हो रही थी वहीं अचानक भक्ति-धर्म का झंडा फहरा उठा। पत्थर पर दूब जमने की जो कहावत प्रसिद्ध है उसे चरितार्थ होते देख लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। अस्सी घावों के चिह्न जिसकी वीरता के अद्भुत साक्षी थे उन्हीं राणा सांगा की प्रचंड तलवार के ठीक नीचे ही हरि-भक्ति की एक अमर वेलि पल्लवित हो उठी। कौन जानता था कि खड्ग देवता के सबसे बड़े पुरोहित महाराणा सांगा की पुत्रवधू और उसके (खड्ग देवता के) सबसे बड़े पुजारी वीरश्रेष्ठ जयमल की बहन अचानक ही गा उठेगीः

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ॥ टेक ॥

नाच नाच पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूं जाचूँगी।

परंतु साँवरे के रंग में रँगी हुई उस प्रेम-प्रतिमा की स्वर लहरी ने केवल मरुभूमि राजस्थान को ही नहीं, सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम भारत को अपनी पावन भक्ति-धारा से अभिसिंचित कर दिया।

राजस्थान में जिस धर्म और संस्कृति का प्रभाव था वह तलवार और रक्त-धारा की कठोर भित्ति पर स्थित था, परंतु भक्ति-धर्म की नींव में मानव-हृदय की कोमल भावनायें निहित थीं। इसीलिये बंगाल की भावुक प्रकृति ने भक्ति-धर्म का पूर्ण स्वागत किया और वहीं इस कामिनी-जनोचित धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। बंगाल के पुरुष—चैतन्य और चंडीदास—में राधा भाव की पूर्णता मिलती है। दूसरी ओर राजस्थान की स्त्रियाँ तक—कर्मदेवी, जवाहर बाई इत्यादि—तलवार लेकर रक्त की नदियाँ बहाया करती थीं। इसी वैषम्य के कारण बंगाल में राजपूत धर्म की प्रतिष्ठा न हो सकी और राजस्थान में भक्ति-धर्म कभी पल्लवित न हो सका। परन्तु राजस्थान के जलवायु में उत्पन्न होकर वहाँ की संस्कृति और धर्म में पलकर, पुरुषोचित भावना के वातावरण में रहकर भी मीराँ ने माधुर्य भाव की भक्ति का जो चरम विकास प्रदर्शित किया, वह मानव जाति के इतिहास में एक अद्भुत घटना है। बंगाल जैसे सुदूर प्रांत से आकर जिन रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने व्रजभूमि में माधुर्य भाव की रस-धारा उमड़ा दी थी, उन्हें भी मीराँ की भक्ति-भावना के सम्मुख नत-मस्तक होना पड़ा था। मीराँ और जीव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



गोस्वामी के सम्बन्ध में जो जनश्रुति[1] प्रसिद्ध है, वह सम्भव है वास्तविक सत्य न भी हो, परन्तु रूपक के रूप में उसकी सत्यता असंदिग्ध है। सूर आदि कवियों ने भ्रमरगीत के द्वारा ज्ञान और योग से भक्ति की जो श्रेष्ठता प्रमाणित करने का प्रयास किया, उसे साधारण जनता ने योगी और महाज्ञानी जीव गोस्वामी को भक्त मीराँ के सामने निरुत्तर दिखाकर इस जनश्रुति द्वारा अत्यंत सरल रीति से प्रमाणित कर दिया। मीराँ भक्ति-भावना की प्रतीक हैं, उनका जीवन ही भक्ति-साधना है और उनकी कविता में उसकी चरम सिद्ध है।

## २

मीराँबाई का इतिहास और जीवन-वृत्त हिन्दी के अन्य महाकवियों की भाँति एकदम अनिश्चित नहीं है। यह सच है कि हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि मीराँबाई किस संवत् में अवतरित हुई, अथवा कब और कैसे उन्होंने यह नश्वर देह छोड़ी; परन्तु यही तो सब कुछ जानना नहीं है। जो जानना आवश्यक है वह तो यह है कि वे किस युग, किस वंश, किस वातावरण में अवतरित हुईं; उनकी शिक्षा और दीक्षा किस प्रकार की हुई; उनके जीवन में कितने संघर्ष किस रूप में उपस्थित हुए और उन संघर्षों को उन्होंने किस रूप में कितनी सफलता के साथ झेला। मीराँ के सम्बन्ध में इन सभी आवश्यक बातों का निश्चित ज्ञान प्राप्त करना कुछ कठिन नहीं है। दैवयोग से वे राजपूताने के एक प्रसिद्ध राजकुल में उत्पन्न हुईं और एक अतिप्रसिद्ध राजकुल में उनका विवाह हुआ। राजस्थान

---

१—कहा जाता है कि मीराँ वृन्दावन में भक्त-शिरोमणि जीव गोस्वामी के दर्शन के लिए गईं। गोस्वामी जी सच्चे साधु थे और स्त्रियों की छाया तक से भागते थे, इसीलिए भीतर से ही कहला भेजा कि हम स्त्रियों से नहीं मिलते। इसपर मीराँबाई ने उत्तर दिया कि मैं तो समझती थी वृन्दावन में श्रीकृष्ण जी ही एक मात्र पुरुष हैं परंतु यहाँ आकर जान पड़ा कि उनका एक और प्रतिद्वंद्वी पैदा हो गया है। मीराँ का ऐसा माधुर्य-भाव से युक्त प्रेमपूर्ण उत्तर सुनकर जीव गोस्वामी नंगे पैर बाहर निकल आए और बड़े ही प्रेम से मीराँबाई से मिले।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



के इतिहास में उनके पितृकुल और श्वसुर कुल की वीरता स्वर्ण अक्षरों में अंकित है; उनकी शिक्षा-दीक्षा और जीवन-संघर्ष का इतिहास उनके पदों में मिलता है, उनके जीवन के सौन्दर्य, सफलता और विजय का इतिहास साहित्य और जनश्रुतियों में बिखरा पड़ा है। यदि थोड़ी कल्पना और अनुमान का सहारा लिया जाय तो मीराँबाई का इतिहास और जीवन-वृत्त निश्चित रूप से उपस्थित किया जा सकता है। अनुमान शब्द सुनकर चौंकने की आवश्यकता नहीं। जहाँ सत्य की खोज के लिए अन्य कोई साधन अप्राप्य हैं, वहाँ अनुमान ही एकमात्र सहारा है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# दूसरा अध्याय

## आधार सामग्री

### १

**अंतः साक्ष्य**—मीराँ के जीवन वृत्त-विचार के लिए, सबसे पहले, उनके नाम से प्रसिद्ध पदों की ओर ध्यान जाता है। मीराँ की रचनाओं में ऐसे पद पर्याप्त संख्या में मिल जाते हैं जिनमें उनकी जीवन-सम्बन्धी बातों का स्पष्ट निर्देश मिलता है। परन्तु उनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं है। उन पदों में प्रधान रूप से दो विषयों का निर्देश मिलता है—एक तो संत रैदास तथा उनके शिष्यों के सत्संग का प्रभाव और मीराँ की वैराग्य-प्रवृत्ति; दूसरे राणा द्वारा किए गए असफल अत्याचारों का वर्णन। काव्य-वस्तु की दृष्टि से विचार करने पर उन पदों का मीराँ द्वारा लिखा जाना असम्भव नहीं है। गोसाईं तुलसीदास ने भी कवितावली और विनयपत्रिका में ऐसे छंद और पद पर्याप्त संख्या में लिखे हैं जिनमें उनकी जीवन सम्बंधी बातों का स्पष्ट निर्देश मिलता है और उनकी प्रामाणिकता में किसी को भी संदेह नहीं है। परन्तु मीराँ के इन पदों के सम्बन्ध में संदेह होना स्वाभाविक है। कुछ पद तो ऐसे हैं जो मीराँ के लिखे हो ही नहीं सकते। एक उदाहरण लीजिए।

म्हाँरे सिर पर सालिगराम, राणा जी म्हारो काईं करसी ॥टेक॥
मीरा सूँ राणा ने कही रे, सुण मीरा मोरी बात।
साधों की संगत छोड़ दे रे, सखियाँ सब सकुचात ॥ १ ॥
मीरा ने सुन यों कही रे, सुन राणा जी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात ॥ २ ॥
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीरा हाथ।
अमृत करके पी गई रे, भली करें दीनानाथ ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मीरा प्याला पी लिया रे, बोली दोउ कर जोर।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो ओर ॥ ४ ॥
आधे जोहड़[1] कीच है रे, आधे जोहड़ हौज।
आधे मीरा एकली रे, आधे राणा की फौज ॥ ५ ॥
काम क्रोध को डाल के रे, सील लिये हथियार।
जीती मीरा एकली रे, हारी राणा की धार[2] ॥ ६ ॥
काचगिरी[3] का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिनमें मीरा ऐसी दमके, लख तारों में परकास ॥ ७ ॥

[ मीरा की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ४०-४१ ]

इस पद की ध्वनि कुछ ऐसी है जो इसे मीरां-रचित होने में संदेह उपस्थित करती है। विशेषकर अंतिम दो चरण 'काचगिरी का चौतरा रे' इत्यादि तो मीराँ की लेखनी से उद्भूत हो ही नहीं सकते। इसी प्रकार मीराँ तथा उनकी सास और ननद की बातचीत जिन पदों में दी गई है, उनके मीराँ-रचित होने में पूर्ण संदेह है। एक उदाहरण देखिए :

[ ऊदा ] भाभी मीरा कुल ने लगाई गाल,[4]
ईडर गढ़ का आया जी ओलंबा[5]।
[ मीरा ] बाई ऊदा थाँरे म्हाँरे नातो नाहिं,
बासो बस्यां का आया जी ओलंबा[6] ॥१॥
[ ऊदा ] भाभी मीराँ का साधाँ का संग निवार,
सारो सहर थाँरी निन्दा करै।
[ मीरा ] बाई ऊदा करे तो पड़या रूख मारो,
मन लागो रमता राम सूँ ॥२॥

[ वही पृ० ३७-३८ ]

ये पद तो नौटंकियों के पद्य बद्ध वार्तालाप जैसे जान पड़ते हैं। इनका मीराँ द्वारा लिखा जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं जान पड़ता।

१ बड़ा तालाब या झील। २ फौज। ३ बिल्लौर। ४ कलंक। ५ उलाहना। ६ तुम्हारे घर आकर रही इसीसे उलाहना मिला।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



अंतःसाक्ष्य के इन पदों में एक विशेष बात यह है कि इनमें एक ही बात कितने ही पदों में कितनी ही तरह से कही गई है। राणा के विष का प्याला भेजने का उल्लेख लगभग डेढ़ दर्जन पदों में मिलता है। इसी प्रकार सतगुरु के रूप में रैदास का उल्लेख भी लगभग आधे दर्जन पदों में है। इस पुनरुक्ति से दो ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—या तो मीराँ के पास विषय का इतना अभाव था कि वे एक ही बात को अनेक प्रकार से कहने को बाध्य थीं, अथवा उन्होंने दो ही एक पद इस विषय पर लिखे होंगे, बाद में अन्य कवियों ने न जाने किस भावना से प्रेरित हो इसी विषय पर कितने ही पद कुछ परिवर्तन और परिवर्धन के साथ मीराँ के नाम से लिखकर प्रचलित करा दिए। पिछली सम्भावना ही अधिक जान पड़ती है क्योंकि यह विषय कुछ ऐसा है जिस पर विषयाभाव होने पर भी मीराँ ने पुनरुक्ति न की होगी। फिर इन पदों में कहीं कहीं 'साँप-पिटारा' भेजने तथा 'सूल-सेज' पर सुलाने का भी उल्लेख मिलता है। यथा :

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥टेक॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय॥
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगरामगई पाय॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय॥
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय॥
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय॥
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय॥

[ मीरा की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ६४ ]

और भी राणा जी म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं क्या करूँ॥ टेक॥

× × × × × ×

विष का प्याला भेजिया जी जावो मीरा पास।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरे राम जी के बिस्वास।।

× × × × × ×

१ पीकर।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



पेयाँ[1] बासक[2] भेजिया जी, ये है चन्दन हार।
नाग गले में पहिरिया, म्हाँरो महलाँ भयो उजार ॥३॥
[ मीरा की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ६५ ]

परन्तु 'साँप पिटारा' तथा 'सूल सेज' का उल्लेख न तो नाभादास के छप्पय में है और न प्रियादास के कवित्तो में। नाभादास ने केवल एक ही छप्पय मीराँ के सम्बन्ध में लिखा था, इसलिए सम्भव है कि स्थानाभाव के कारण वे इनका उल्लेख न कर पाए हों, परंतु प्रियादास को तो स्थान का अभाव न था। उन्होने तो दश कवित्तों में कितना ही बातों का उल्लेख किया है और यदि उनके समय में मीराँ के पास 'साँप पिटारा' भेजने तथा उनको 'सूल सेज' पर सुलाने की कथा का प्रचार होता अथवा उपर्युक्त दोनों पद मीराँ के ही लिखे होते तो वे इनका उल्लेख करना कभी न भूलते। फिर रघुराजसिंह रचित 'भक्तमाला' में जो विविध जनश्रुतियो का अत्यधिक विस्तार मिलता है उसमें भी 'साँप पिटारा' और 'सूल सेज' का उल्लेख नहीं है। इससे यह बात निश्चित रूप से प्रमाणित हो जाती है कि उपर्युक्त दोनों पद मीराँ की रचना नहीं है, वरन् मीराँ की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् प्रियादास के समय के उपरांत, जब भक्त मीराँ के संबंध में नए-नए कथा-प्रसंगों और गीत तथा पदों की सृष्टि हो रही थी, उस समय उनके किसी भक्त ने इन पदों की रचना करके जनता में प्रचलित करा दिया, जो कालांतर में मीराँ-रचित माने जाने लगे। फिर उपर्युक्त दोनों पदों में पहले में पिटारे का साँप शालिग्राम की मूर्ति बन जाता है, परंतु दूसरे में बासक (वासुकि नाग) चंदन हार के रूप में परिवर्तित होकर महल में उजाला करता है। ये दोनों परस्पर विरोधी बातें सत्य नहीं हो सकतीं, इनमें एक तो अवश्य ही असत्य है और अधिक सम्भव है कि दोनों ही असत्य हों। सच तो यह है कि ये दोनों ही पद मीराँ के लिखे नहीं हैं।

मध्यकालीन उत्तर भारत में प्रमुख भक्तों और महापुरुषों की स्मृति अनेक गीतों, कथा-वार्ताओं और प्रसंगों तथा रूपकों द्वारा जीवित रखी जाती थी।

---

१ सन्दूक, पिटारा। २ वासुकि नाग, साँप।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



कवि और गायक गीतों और पदों में उन महात्माओं की कीर्ति गाते फिरते थे; वृद्धगण उनके सम्बन्ध में अनेक कथा और प्रसंग उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहते थे और संगीत अथवा नौटंकियों के छंदबद्ध वार्तालापों में उनके जीवन के प्रमुख प्रसंग रूपकों के रूप में प्रदर्शित किए जाते थे। गोपीचंद, पूरन भक्त, और हकीकत राय के रूपक पंजाब में अब तक प्रचलित हैं संयुक्त प्रांत के पूर्वी भाग में अब तक जोगी फकीर गोपीचंद और भरथरी के गीत गा-गा कर भीख माँगते हैं। राजस्थान में मीराँबाई के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कितने ही रूपक प्रचलित रहे होंगे जो पर्वों और त्योहारों के अवसर पर जनता के सामने खेले जाते होंगे। साथ ही रमते योगी और फकीर, गायक और चारण, उनके सम्बंध में विविध प्रकार के गीत और पद गा-गा कर जनता को मुग्ध करते रहे होंगे। स्त्रियों में मीराँ का विशेष रूप से अधिक प्रचार था। कालांतर में कितने ही गीत और पद, रूपकों के कितने ही छंदबद्ध वार्तालाप मीराँ के नाम से जनता में प्रचार पा गए होंगे। यह कोरा अनुमान ही नहीं है, इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण 'साहित्य रत्नाकर' नामक संग्रह-ग्रंथ में मिलता है। गुजरात के श्री कहान जी धर्मसिंह ने 'साहित्य-रत्नाकर' नामक दो जिल्दों में हिन्दी की प्राचीन कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया जिसकी तृतीयावृत्ति १९२६ ई० में हुई। इसके प्रथम भाग में पृ० ४१७-१८ पर मीराँबाई के नाम से तीन छंद, १ दोहा और दो कवित्त दिए गए हैं जिनमें दोनों कवित्त इटावे के प्रसिद्ध कवि देव जी की रचनाएँ हैं जो सम्भवतः मीराँ की प्रशंसा में लिखे गये थे। देव कवि के नाम पर भी कितने कवित्त और सवैया उसमें संग्रहीत हैं जिससे जान पड़ता है कि देव-रचित इन कवित्तों को संग्रहकर्ता मीराँ-रचित ही समझता था। ठीक इसी प्रकार की भूलें मीराँ के इन पदों के सम्बंध में भी हुई हैं। बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीराँबाई की शब्दावली' में 'मीराँबाई और कुटुम्बियों की कहा-सुनी' के अंतर्गत जो छंदबद्ध वार्तालाप मिलते हैं, वे सम्भवतः मीराँबाई के जीवन-संम्बन्धी रूपकों और नौटंकियों के अवशेष हैं और अन्य पद भी इसी प्रकार भूल से उनकी रचना में स्थान पा गए हैं।

अस्तु, जिन पदों में मीराँ की जीवन संबंधी बातों का स्पष्ट निर्देश मिलता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



है, अंतःसाक्ष्य के वे पद अधिकांश मीराँ की रचनाएँ नहीं हैं। परन्तु इस प्रकार के सभी पदों को सहसा अप्रामाणिक मानना भी ठीक नहीं है। कुछ पद तो मीराँ के ही लिखे जान पड़ते हैं, परन्तु निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए देखिए :

राणा जी मैं तो गोविंद का गुण गास्याँ ॥ टेक ॥
चरणामृत का नेम हमारे, नित उठ दरसन जास्याँ ॥ १ ॥
हरि मन्दिर में निरत करास्याँ, घूँघरिया धमकास्याँ ॥ २ ॥
राम नाम का जहाज चलास्याँ, भवसागर तर जास्याँ ॥ ३ ॥
यह संसार बाड़ का काँटा, ज्याँ संगत नहिं जास्याँ ॥ ४ ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्याँ ॥ ५ ॥

[ मीराबाई की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस संस्करण पृ० ६६ ]

यह पद मीराँ का ही लिखा जान पड़ता है। इस प्रकार के कुछ पद सम्भवतः मीराँ ने लिखे होंगे, परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी कीर्ति बढ़ने लगी, त्यों त्यों उनके सम्बन्ध में नई-नई जनश्रुतियों का प्रचार बढ़ने लगा और उन्हीं के अनुरूप मीराँ के नाम से नए-नए पदों का प्रचार भी होने लग गया। इन नए पदों से मीराँ के पदों को छाँट निकालना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतः इन पदों को अंतःसाक्ष्य के रूप में स्वीकार करना ठीक नहीं है, फिर भी इनसे बहिःसाक्ष्य का उपयोग तो किया ही जा सकता है और यही उपयोग उपयुक्त भी है।

अंतःसाक्ष्य के इन पदों के अतिरिक्त शेष अगणित पदों में मीराँ की भक्ति-भावना का अद्भुत प्रवाह मिलता है जिनमें उनका जीवन सम्बन्धी बातों का निर्देश नहीं है। इनमें कुछ पद तो ऐसे भी हैं जिनमें कवि ने अपनी भक्ति-भावना के आवेश में अपने जीवन की ओर भी संकेत किया है। यथा :

तेरो कोई नहिं रोकणहार मगन होइ मीराँ चली। टेक
लाज, सरम कुल की मरजादा सिर सैं दूर करी।
मान अपमान दोऊ धर पटके निकसी हूँ ज्ञान गली ॥ १ ॥
× × × × × ×

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सेज सुखमणा मीरा सोहै, सुभ है आज घरी ।
तुम जाओ राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥ ४ ॥

[ मीरा मन्दाकिनी पद १०९ पृ० ५१ ]

अथवा—आली रे मेरे नैनन बान पड़ी । टेक ॥
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ॥ १ ॥
×× +× ×
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगड़ी ॥ ४ ॥

[ मीराबाई की पदावली वे० प्रे० पृ० २०]

परन्तु मीराँ के पदों में उनके आध्यात्मिक विकास का जो क्रमिक इतिहास मिलता है वह वास्तव में महत्वपूर्ण है । मीराँ के पदों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हमें चार-पाँच विशिष्ट धाराओं के पद मिलते हैं । सबसे पहले नाथ सम्प्रदाय के योगियों के प्रभाव से प्रभावित होकर मीराँ के कितने ही पद 'जोगी' के सम्बन्ध में मिलते हैं । एक प्रसिद्ध उदाहरण देखिए :

जोगी मत जा मत जा, पाय परूँ मैं चेरी तेरी हौं ।
प्रेम भगति को पैड़ो ही न्यारी, हमकूं गैल बता जा ।
अगर चदन की चिता रचाऊँ, अपणे हाथ जला जा ।
जल जल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा ।

[ मीराबाई की शब्दावली पृ० ९८ ]

फिर संतों के प्रभाव से प्रभावित संसार और जीवन की नश्वरता प्रकट करने वाले भजन के पद मिलने है । एक उदाहरण देखिए:

भज मन चरन कँवल अविनासी ॥ टेक ॥
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी ॥
कहा भया तीरथ ब्रत कीन्हें, कहा लिए करवत कासी ॥ १ ॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ।
यों संसार चहर की बाजी, साँझ पड़याँ उठि जासी ॥ २ ॥

[ मी० श० वे० प्रे० प० ११-२ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



फिर आगे बढ़कर उसी प्रभाव से प्रभावित रहस्योन्मुख विरह के पद मिलते हैं। यथा :

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाणे कोय ॥ टेक ॥
सूनी ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय !
गगनु मँडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय ॥ १ ॥
[ मी० शब्दा० वे० प्रे० पृ० ४ ]

तीसरे भागवत के प्रभाव से प्रभावित श्रीकृष्ण-लीला और विनय के पद मिलते हैं जो सूरदास के पदों से समानता रखते हैं। उदाहरण के लिए देखिए:

मेरो मन बसिगो गिरधर लाल सों ॥टेक ॥
मोर मुकुट पीताम्बरो, गल बैजंती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमति को लाल ॥१ ॥
[मी० शब्दा० वे० प्रे० पृ० ९ ]

और विनय के पद :

मन रे परसि हरि के चरण ॥ टेक ॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण ॥ १ ॥
[ मी० शब्दा० वे० प्रे० पृ० १ ]

विनय और लीला के पदों के अतिरिक्त विरह के पद भी मिलते हैं जिनमें कृष्ण-काव्य के विप्रलम्भ शृंगार की झलक मिलती है। यथा :

डारि गयो मनमोहन पासी ॥ टेक ॥
आँबा की डालि कोइल इक बोलै,मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।
विरह की मारी मैं बन बन डोलूँ, प्रान तजूं करवत ल्यूं कासी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥
[ मी० की पदावली हि० सा० सम्मेलन सं० पृ० ३४-३५ ]

अंत में कृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर मीराँ गिरधरलालमय हो जाती है और उनके कंठ से उल्लास भरे पद फूट निकलते हैं जिनमें माधुर्य भाव की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। यथा :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
अथवा कहाँ कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया।
बंसी केरे बजैया कन्हैया।
बृंदाबन की कुंज गलिन में गहे लीनो मेरो हाथ कन्हैया॥ इत्यादि
[ राग कल्पद्रुम प्रथम भाग पृ० ६६१ ]

इन विविध प्रकार के पदों में मीराँ के जीवन पर विविध प्रभाव और उसके परिणाम-स्वरूप उनके आध्यात्मिक जीवन के विकास-क्रम का सुंदर इतिहास मिलता है। संत-प्रभाव से प्रभावित होकर संसार की नश्वरता और ईश्वर-भक्ति की सारता प्रकट करती हुई उनकी प्रतिभा रहस्योन्मुखी हो उठती है, फिर भागवत के प्रभाव से कृष्ण-लीला, विनय के पद और विप्रलम्भ शृंगार से प्रारम्भ होकर उनके पदों में उस तन्मयता और प्रेम का परिचय मिलता है जो आध्यात्मिक अनुभूति का चरम विकास है और जो साहित्य में गोपी-भाव अथवा राधा-भाव के नाम से प्रसिद्ध है।

२

**बहिःसाक्ष्य**—मीराँबाई के जीवन-वृत्त-सम्बन्धी बहिःसाक्ष्यों में सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रंथ नाभादास-रचित 'भक्तमाल' है, जिसकी रचना सं० १६४२ के पीछे किसी समय हुई थी। उस समय तक मीराँबाई को मरे अधिक दिन नहीं हुए थे--शायद सब मिलाकर बीस वर्ष भी न बीते पाए थे। इसलिए उससे मीराँ के सम्बन्ध में निकट सत्य जानने की पूरी सम्भावना थी। परन्तु दुर्भाग्य से 'भक्तमाल' में मीराँ के सम्बन्ध में केवल एक ही छप्पय मिलता है। परंतु वह एक ही छप्पय इतना अर्थगर्भित और गम्भीर है कि उससे कवि के जीवन पर पर्य्याप्त प्रकाश पड़ता है। वह छप्पय इस प्रकार है :

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीराँ गिरधर भजी।
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहिं दिखायो!
निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



दुष्टनि दोष बिचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बाँको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो ॥
भक्ति निसान बजाय कैं, काहू ते नाहिन लजी।
लोक-लाज कुल शृंखला तजि मीराँ गिरधर भजी ॥

इसमें मीराँ की भक्ति-भावना की प्रशंसा की गई है। 'गरल अमृत ज्यों पीयो' में एक अलौकिक घटना का उल्लेख किया गया है जो बिलकुल असम्भव भी नहीं कहा जा सकती।

'भक्तमाल' के पश्चात् गुसाईं हित हरिवंश के प्रसिद्ध विद्वान् शिष्य हरी-राम व्यास की 'बानी' के पदों में कुछ समकालीन भक्तों का उल्लेख है जिनमें मीराँबाई भी एक हैं। एक पद इस प्रकार है :—

बिहारहिं स्वामी बिन को गावै ?
बिनु हरिवंसहिं राधिकावल्लभ को रस रीति सुनावै ?
रूप सनातन बिनु का वृन्दा बिपिन माधुरी पावै ?
कृष्णदास बिनु गिरधर जू को को अब लाड़ लड़ावै ?
मीराबाई बिनु को भक्तनि पिता जान उर लावै ?
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सब बंधु कहावै ?
परमानंद दास बिनु को अब लीला गाय सुनावै ?
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कबिहि कहि आवै ?

इस पद की ध्वनि से ऐसा ज्ञात पड़ता है कि इसकी रचना उस समय हुई थी जब इसमें उल्लिखित सभी भक्त स्वर्ग सिधार चुके थे। परंतु इसमें वर्णित सभी भक्त व्यास जी के समकालीन थे और उनसे व्यास जी का परिचय भी अवश्य रहा होगा। इस पद में हार्दिकता कूट-कूट कर भरी है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि भक्तों की जिन विशेषताओं का उल्लेख इसमें किया गया है वे केवल सुनी-सुनाई नहीं कवि की स्वयं अनुभूत हैं। व्यास जी सं० १६२२ के आसपास किसी समय गुसाईं हित हरिवंश के शिष्य हुये थे, इसके पहले वे ओड़छा के महाराज मधुकर शाह के राजगुरु थे। अस्तु, रूप,सनातन,कृष्णदास मीराँबाई, जैमल, परमानंददास और सूरदास आदि भक्तों का परिचय उन्होंने



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सं० १६२२ के आसपास अथवा कुछ बाद में प्राप्त किया होगा। मीराँबाई के अतिरिक्त अन्य सभी भक्तों का सं० १६२२ तक जीवित रहने का निश्चय-सा है, अस्तु इस पद से यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि मीराँबाई भी सं १६२२ के आसपास तक जीवित थीं।

हरि-भक्तों को पिता समझ कर हृदय से लगाना मीराँबाई की ही विशेषता थी। मीराँ के चरित्र की यह पवित्रता और उच्चता, सरलता और विनम्रता उनके काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में भी मीराँबाई के सम्बंध में कुछ बातें मिलती हैं। यह प्राचीन वार्ता ग्रंथ गुसाईं गोकुलनाथ द्वारा सं० १६२५ में लिखा माना जाता है। इसकी प्रामाणिकता के सम्बंध में विद्वानों को संदेह रहा है। अभी कुछ ही दिनों पहले विद्या-विभाग काँकरोली से प्रकाशित 'प्राचीन वार्ता रहस्य' द्वितीय भाग की भूमिका में इस ग्रंथ को प्रामाणिक प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है, और इन वार्ताओं के सम्बंध में कुछ नई बातें भी बतलाई गई हैं। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के तीन संस्करण माने जाते हैं। मूल रूप में इन वार्ताओं का जन्म मौखिक कथन और प्रवचन द्वारा हुआ। श्री गोकुलनाथ जी कथा-प्रवचनों में 'बैठक चरित्र, वरू वार्ता और सेवकों से सम्बंध रखने वाले चरित्र (वार्ता के प्रसंग) वर्णन करते थे।' इस प्रथम संस्करण का समय सं० १६४२ से १६४५ तक माना गया है। इसके कुछ समय पश्चात् 'संग्रह की सहजिक मानवीय लिप्सा वृत्ति ने' उन्हें सुरक्षित रखने के लिए एक अव्यवस्थित लिखित स्वरूप दिया जिसका समय सं० १६६४ से १७२५ तक माना जाता है। यह द्वितीय संस्करण था जिसमें ८४ और २५२ वैष्णवों का वर्गीकरण किया गया और गोकुलनाथ जी के शिष्य हरिराम ने वार्ताओं में गोकुलनाथ जी का नाम निर्देश किया। तीसरा संस्करण श्री हरिराय जी के समय में हुआ। इसी समय हरिराय ने 'भाव प्रकाश' नामक टिप्पण भी लिखा। इस प्रकार वार्ताओं को प्रामाणिक प्रमाणित अवश्य किया गया परंतु इतिहास और जीवन-चरित्र के लिये इसकी उपयोगिता नगण्य है। इसका कारण यह है कि ये वार्ता-ग्रंथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



बहुत कुछ पुष्टि मार्ग के पुराण हैं जिनमें अलौकिक और अतिमानुषिक बातों का समावेश है केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। 'श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक कृष्णदास मेघन छत्री तिन्की-वार्ता' के प्रथम प्रसंग में मिलता है :—

'बहुर बद्रिकाश्रम ते आगें पधारे जहाँ जीव की गम्य नाहीं है। तहाँ बेदव्यास जी कौ स्थान है तहाँ पधारे। तब कृष्णदास सों कह्यौ जो तू ठाड़ो रहियौ। तब श्री आचार्य जी महाप्रभू आगे पधारे। तब वेदव्यास जी सामुहें आये। सो श्री आचार्य जी महाप्रभून कौं अपने धाम में लै आये। पाछें वेदव्यास जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभून सों कह्यौ जो तुम नै श्री भागवत की टीका कीनी है सो मोकों सुनावौ। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने जुगल गीत के अध्याय कौ एक श्लोक कह्यौ। सो श्लोक :

वाम बाहु कृत वाम कपोलो वलितरभ्रू धरार्पित वेणुं।
कोमलांगुलि निराश्रित मार्ग गोप्यईरयति यत्र मुकुन्दः॥

या श्लोक कौ व्याख्यान कह्यौ सो तीन दिन में सम्पूर्ण भयौ। तब वेदव्यास जी ने बीनती करी जो मैं या भागवत के व्याख्यान कों अब धारना करि सकत नाहीं तातें अब क्षमा करौ। पाछें श्री आचार्य जी महाप्रभून ने वेदव्यास जी सों कह्यौ जो तुम वेदांत के ऐसें सूत्र कहा कीये जो मायावाद पर अर्थ लग्यो। तब व्यास जी ने कह्यौ जो में कहा करूँ मोकों आज्ञा ही ऐसी हुती जो ऐसे अर्थ करियौ। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कही जो में ब्रह्मवाद पर अर्थ कियो है सो व्यास जी को सुनायो सो व्यास जी सुनकर बहुत प्रसन्न भए।'

[चौरासी वैष्णवन की वार्ता, डाकोर संस्करण सं० १९६० पृ० ८]

इस वैज्ञानिक युग में इस प्रसंग की सत्यता पर कोई विश्वास नहीं कर सकता। वार्ताकार ने वल्लभ सम्प्रदाय वालों की प्रशंसा में ऐसे कितने ही प्रसंगों की अवतारणा की है, परंतु जो इस सम्प्रदाय से अलग थे और जिनका प्रभाव इस सम्प्रदाय के उत्कर्ष में बाधक प्रमाणित हो रहा था अथवा हो सकता था उनकी निन्दा और अपमान करना भी इस ग्रंथ का एक उद्देश्य जान पड़ता है। वृंदावन के रूप-सनातन के प्रभाव से ब्रज-मंडल में वल्लभ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सम्प्रदाय की बड़ी क्षति हो रही थी और पश्चिमी भारत —राजस्थान और गुजरात—में मीराँबाई के व्यक्तित्व के कारण इस सम्प्रदाय के उत्कर्ष में बाधा पड़ रही थी। इसीलिये इनको अपदस्थ करने के लिए जहाँ-तहाँ इनका उल्लेख किया गया है। परंतु इससे भी एक लाभ ही हुआ। साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण वार्ता में मीराँबाई की महत्ता प्रकट करने वाले अलौकिक और अद्भुत प्रसंगों का संकेत भी नहीं है, केवल लौकिक प्रसंग ही उसमें वर्णित हैं और यद्यपि इनमें मीराँ का अपमान करने का ही प्रयत्न किया गया है, फिर भी सावधानी से उपयोग करने पर बहुत कुछ उपयोगी सामग्री मिल सकती है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में मीराँबाई से सम्बंध रखने वाले निम्नलिखित अवतरण मिलते हैं :—

( १ ) गोविन्द दुबे आचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्ता

और एक समें गोविन्द दुबे मीराँबाई के घर हुते तहाँ मीराँबाई सो भगवद्वार्ता करत अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविन्द दुबे मीराँबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं, तब श्री गुसाईं जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहाँ जाय पहुँचै, ता समय गोविन्द दुबे सध्याबंदन करत हुते, तब ब्रजवासी ने आय के वह पत्र दीनों सो पत्र बाँचि के गोविन्द दुबे तत्काल उठे, तब मीराँबाईने बहुत समाधान कीयो, परि गोविन्द दुबे नें फिर पाछें देखौ।

[ प्रसंग २ चौ० बै० की वा डाकोर सं० १९३० पृ० १२६-१२७

( २ ) अथ मीराँबाई के पुरोहित रामदास तिनकी वार्ता

सो एक दिन मीराँबाई के श्री ठाकुर जी के आगे रामदास जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते, तब मीराँबाई बोली जो दूसरौ पद श्री ठाकुर जी कौ गावो तब रामदास जी ने कह्यौ मीराँबाई सों जो अरे दारी रांड यह कौन को पद है। यह कहा तेरे खसम कौ मूँड़ है जो जा आज से तेरौ मुहड़ौ कबहूँ न देखूंगो। तब तहाँ ते सब कुटुम्ब को लै कें रामदास जी उठि चले तब मीराँबाई नें बहुतेरो कह्यौ परि रामदास जी रहे नाहीं। पाछें फिरि कें वाको मुख न देख्यौ। ऐसे अपने प्रभून सों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



अनुरक्त हुते। सो वा दिन तें मीराँबाई को मुख न देख्यौ, वाकी वृत्ति छोड़ दीनी, फेर वाके गाँव के आगे होय के निकसे नाहीं। मीराँबाई ने बहुत बुलाये परि वे रामदासजी आये नाहीं। तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यौ जो राँड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समस्त्व नाहीं जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है।

[ प्रसंग १ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९३० पृ० १३१ १३२ ]

(३) अथ कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता

सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारका गये हुते सो श्री रणछोर जी कें दर्शन करिके तहाँ ते चले सो आपन मीराँबाई के गाँव आये सो वे कृष्णदास मीराँबाई के घर गये तहाँ हरिवंश व्यास आदि दे विशेष सह वैष्णव हुते सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पंद्रह दिन भये हुते तिनकी बिदा न भई हुती और कृष्णदास ने तौ आवत ही कहीं जो हूं तो चलूंगौ। तब मीराँबाई ने कही जो बैठो तब कितनेक मोहर श्रीनाथ जी को देन लागी सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत तातें तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं सों ऐसे कहिके कृष्णदास उहाँ ते उठि चले।

[ प्रसंग १ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९३० ]

इन उद्धरणों से हम तीन प्रकार के निष्कर्ष निकाल सकते हैं। पहला निष्कर्ष मीराँबाई के समय के सम्बंध में है। पहले उद्धरण के प्रसंगानुसार मीराँ श्री वल्लभाचार्य की समकालीन ठहरती हैं। वल्लभाचार्य की मृत्यु सं० १५८७ में हुई थी; अतः यह प्रसंग इसमें पहले किसी समय का होगा—सम्भवतः सं० १५८० से १५८५ के बीच किसी समय का जान पड़ता है। उस समय मीराँबाई उस अवस्था को प्राप्त कर चुकी थीं जब कि गोविन्द दुबे जैसे महाप्रभु के पटु शिष्यों को भी उनसे भगवद्वार्ता करते हुए अटकना पड़ता था। अस्तु, उस समय मीराँ की अवस्था २५ वर्ष से कम न रही होगी, अतएव उनका जन्म काल सं० १५५५ और १५६० के बीच में ठहरता है। तीसरे उद्धरण से वे कृष्णदास अधिकारी, हित हरिवंश और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



व्यास की समकालीन ठहरती हैं। कृष्णदास अधिकारी का समय सं० १५५४ से १६३४ तक और हितहरिवंश का सं० १५५६ से १६५६ तक माना गया है; अस्तु, मीराँ का समय निश्चित रूप से सं० १५५५ से सं० १५६० के बीच में जान पड़ता है। तीसरे उद्धरण से पता चलता है कि जब कृष्णदास अधिकारी मीराँ के घर पहुँचे उस समय वहाँ हित हरिवंश के साथ ही साथ व्यास भी थे। ये व्यास (हरीराम व्यास) पहले ओड़छा महाराज के राजगुरु और एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी विद्वान् थे। सं० १६२२ के आसपास गुसाईं हित हरिवंश से शास्त्रार्थ करने जाकर उनके शिष्य हो गए थे। हित हरिवंश और व्यास की एक साथ उपस्थिति यह प्रमाणित करती है कि तीसरे उद्धरण का प्रसग सं० १६२२ के पश्चात् किसी समय का है, यह भी असम्भव नहीं है कि ये दोनों महात्मा दैव संयोग से अलग अलग एक ही समय मीराँबाई के घर पहुँचे हों जैसे कि कृष्णदास भी पहुँच गए थे; परंतु सं० १६२२ से पहले व्यासजी वैष्णव प्रसिद्ध न थे और न इस प्रकार किसी के घर पहुँचते ही थे क्योंकि तब तक उनका एक मात्र उद्देश्य शास्त्रार्थ करना हुआ करता था। परंतु इस प्रसग में वे वैष्णव लिखे गए हैं, अतएव यह प्रसंग निश्चित रुप से सं० १६२२ के पश्चात् किसी समय का है। इस प्रकार मीराँबाई का सं० १६२२ के बाद तक जीवित रहने का प्रमाण मिल जाता है।

दूसरा निष्कर्ष मीराँ की शिक्षा-दीक्षा और उनकी प्रकृति से सम्बन्ध रखता है। इन अवतरणों से पता लगता है कि वल्लभ सम्प्रदाय वालों के

---

१ विद्या-विभाग कांकरौली से प्रकाशित 'प्राचीन वार्त्ता रहस्य' द्वितीय भाग में जो कृष्णदास अधिकारी की वार्ता दी गई है, उसके प्रथम प्रसंग में हरिवंश और व्यास का उल्लेख नहीं मिलता जैसा कि डाकोर से प्रकाशित संस्करण में मिलता है। उसी ग्रन्थ के गुजराती अंश के अनुसार कृष्णदास और मीराबाई की मिलन-तिथि सं० १५८२ के पश्चात् सं १५८३ के आस पास निश्चत की गई है। यदि प्राचीन वार्ता रहस्य का पाठ प्रामाणिक ठहराया जाय तो मीरां के सं० १६२२ तक जीवित रहने का प्रमाण इस प्रसंग से नहीं मिल सकता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



उचित और अनुचित सभी प्रकार के प्रभाव डालने पर भी मीराँ कभी उस सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुईं। उनकी शिक्षा इस कोटि की हुई थी कि वे बिना किसी बाधा के साधु-संतों की संगति करतीं और भगवद्वार्ता करती हुई बड़े बड़े संतों और विद्वानों से मोरचा लेती थीं। उनकी प्रकृति बहुत ही स्वतंत्र जान पड़ती है जिससे वे किसी सम्प्रदाय-विशेष में न रह सकती थीं। फिर भी वे अत्यन्त उदार थीं और अन्य भक्तों और संतों की भाँति उनमें साम्प्रदायिक संकीर्णता न थी। जब कि पुरोहित रामदास एक ज़रा सी बातपर गालियों की बौछार करते हैं, उस समय मीराँ उन्हें घर बैठे भेंट भेजती हैं। जहाँ कृष्णदास अधिकारी मीराँ का अपमान करना ही अपना कर्तव्य और धर्म समझते थे, वहाँ मीराँ ने उनका उचित आदर किया और श्रीनाथ जी के लिए भेंट भी भेजना चाहा। यह उनके चरित्र की महानता सूचित करती है।

तीसरा निष्कर्ष मीराँबाई की कीर्ति के सम्बन्ध में है। तीसरे अवतरण में जब कृष्णदास मीराँ के घर पहुँचते हैं तब वहाँ हित हरिवंश और व्यास जैसे विख्यात वैष्णव मिलते हैं जो सम्भवतः मीराँ की कीर्ति सुनकर उनके दर्शन के निमित्त आए जान पड़ते हैं। गुसाईं हित हरिवंश संस्कृत के अच्छे विद्वान्, भाषा के प्रसिद्ध कवि और राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और व्यास जी भी संस्कृत के प्रकांड पंडित और भाषा के सुकवि थे। स्वयं कृष्णदास भी मीराँ के घर उनका अपमान करने ही नहीं गए थे वरन् उनका उद्देश्य भी हरिवंश और व्यास की भाँति मीराँ का दर्शन करना ही जान पड़ता है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मीराँबाई का उल्लेख बहुत ही कम है। गुसाईं विट्ठलनाथ की सेविका अजब कुंवर बाई की वार्ता से पता चलता है कि मीराँबाई की ससुराल मेवाड़ में थी और उनकी किसी देवरानी का नाम अजब कुंअर बाई[1] था। इसके अतिरिक्त मेरता ग्राम के निवासी

१ श्री गुसाईं जी के सेवक अजब कुँवर बाई तिनकी वार्ता—

सोवे अजब कुँवर बाई मेवाड़ में रहेती हती मीरांबाई की देरानी हती।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



हरिदास बनिया की वार्ता में किसी 'जैमल की बेन' का उल्लेख मिलता है जो गुसाईं जी की शिष्या हो गई थी। इस 'बेन' को कुछ विद्वानों ने[1] मीराँबाई ही मान लिया है, परंतु भली भाँति विचार करने पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। मीराँबाई जयमल की भतीजी बहन अवश्य थीं, परन्तु परदे में रहनेवाली तथा गुसाईं विट्ठलनाथ की शिष्या होने वाली यह 'राजा जैमल की बेन' मीराँबाई के अतिरिक्त कोई अन्य बहन रही होगी; क्योंकि मीराँबाई तो अपने ससुराल में भी परदा न करती थीं और गोविन्द दुबे, रामदास पुरोहित, कृष्णदास अधिकारी आदि सभी से निर्भय भगवद्वार्ता करती थीं और वे कभी भी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुई जैसा कि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से स्पष्ट है।

वार्ताओं के पश्चात् ध्रुवदास की 'भक्त नामावली' (रचना-काल सं० १६६८) में मीराँ का उल्लेख तो अवश्य मिलता है, परन्तु उनके सम्बंध में किसी महत्त्वपूर्ण घटना या प्रसंग का वर्णन नहीं है, न तो उससे कोई आवश्यक निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है; केवल चार दोहों में नाभादास के प्रसिद्ध छप्पय की प्रतिध्वनि की गई है। वे दोहे इस प्रकार हैं :—

लाज छाँड़ि गिरिधर भजी, करी न कुछ कुल कानि।
सोई मीराँ जग विदित, प्रकट भक्ति की खानि॥
ललिता ह्वै लड़ बोलिके, तासो हौं अति हेत।
आनँद सों निरखत फिरत, वृन्दावन रस खेत॥
नृत्यत नूपुर बाँध कै, गावत लै करतार।
विमल हीय भक्तन मिल्यो, तृन सम गन्यो संसार॥
बंधुनि विष ताकौं दयो, करि विचार चित आन।
सो विष फिर अमृत भयो, तब लागे पछतान॥

लाज छोड़कर गिरधर लाल की भक्ति और विषपान—ये दोनों बातें

१ डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६८९।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



'भक्तमाल' के समान इसमें भी वर्णित है। रसक्षेत्र वृंदाबन में मीराँ का निवास और प्रेम तथा भक्ति के उमंग में नाचना और गाना—इनमें एक नवीन और उपयोगी सामग्री मिलती है। इसके अतिरिक्त इनमें भी मीराँ की भक्ति-भावना की प्रशंसा की गई है। आगे चलकर देव कवि ने मीराँ की माधुर्य भाव की अविचल भक्ति की बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना दो कवित्तों में की। प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में ५० कवित्त लिख कर मीराँ के सम्बंध में प्रचलित सभी जनश्रुतियों का संग्रह किया जो रघुराजसिंह-रचित 'भक्तमाला' में अति विस्तार के साथ मिलता है। इन सब का विचार जनश्रुतियों के अंतर्गत किया जायगा।

## ३

**इतिहास और जनश्रुति**—सत्रहवीं शताब्दी के साहित्य में मीराँबाई का थोड़ा बहुत उल्लेख तो मिल जाता है, परन्तु उस समय के लिखे गए मुसलमानों के इतिहास-ग्रंथ तथा राजस्थान की ख्यातों में मीराँ का नाम भी नहीं है। सम्भवतः स्त्री होने अथवा वीर राजपूती धर्म का परित्याग कर भक्ति-धर्म का स्वागत करने के कारण वे इतिहास की दृष्टि में उपेक्षित प्रमाणित हुई; परन्तु मीराँ तो अपनी भक्ति-भावना के प्रभाव से उस अविचल कीर्ति की स्वामिनी बनीं जो इतिहास की अपेक्षा नहीं करती वरन् समस्त राष्ट्र और जाति की सम्पत्ति बन जाता है और जिसे साधारण जनता कविता और गीतों, कथा और कहानियों, चमत्कृत कार्यों और अलौकिक प्रसंगों के रूप में सर्वदा स्मरण करती रहती है। सारांश यह कि इतिहास की सीमा पार कर मीराँ काव्य और जनश्रुति का विषय बन गई।

मीराँबाई के सम्बंध में उत्तरी भारत के लगभग सभी प्रांतों में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यदेश तथा सुदूर बंगाल तक में मीराँ के सम्बंध में अनेक कथाएँ कही जाती हैं। उनकी अपूर्व भक्ति-भावना और जीवन-सौन्दर्य से प्रभावित होकर कवियों ने, भक्तों ने और साधारण जनता ने कितनी ही कथाओं की सृष्टि की जो मौखिक-परम्परा से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आज तक चली आ रही हैं और जिन्हें साहित्य में जनश्रुति की संज्ञा प्रदान की गई है।

इन जनश्रुतियों के पीछे तीन-चार प्रमुख भावनाएँ काम करती दिखाई पड़ती हैं। पहली भावना नियति के अन्यायों के प्रति कवि-हृदय का असंतोष है। यह वही असंतोष है जिससे प्रेरित होकर कवियों ने "नाम चतुरानन पै चूकते चले गये" कह कर विधाता तक की खबर ली है। नियति सर्वदा से महापुरुषों के प्रति अन्याय करती आई है। जिन गोस्वामी तुलसीदास ने 'कलि-कुटिल जीव निस्तार हित' ऐसे रामचरित-मानस का निर्माण किया जिसके एक अक्षर के उच्चारण मात्र से करोड़ों पापों का प्रक्षालन हो जाता है, उन्होंने कहा जाता है, स्वयं किसी पीड़ा से परितप्त हो बड़े कष्ट से प्राण छोड़ा था। उस, महान् कवि और आत्मा के प्रति नियति का यह कितना कठोर उपहास है। कवि-हृदय नियति के ऐसे अन्यायों को सहन नहीं कर पाता और उन पर परदा डाल देने के लिए ऐसी कथाओं की सृष्टि करता है जो भौतिक सत्य न होने पर भी काव्य-न्याय[1] की दृष्टि से परम सत्य जान पड़ती हैं। मीराँ की मृत्यु के सम्बंध में भी एक इसी प्रकार की कथा प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि मीराँ को मनाकर चित्तौड़ लौटा लाने के लिये मेवाड़ के महाराणा ने कुछ ब्राह्मण द्वारका भेजे थे। वे विप्रगण मीराँ से मेवाड़ लौट चलने का आग्रह करने लगे और द्वार पर धरना देकर बैठ गए। मीराँ अपने इष्टदेव श्री रणछोर जी से आज्ञा लेने मंदिर में गई और वहीं मूर्ति के सामने नाचती-गाती[2] उसी में

१ यह शब्द अंग्रेजी के पोईटिक जस्टिस का अनुवाद है। हमारे प्राचीन नाट्य-शास्त्रों में जो सुखांत नाटक लिखने की प्रथा है उसके मूल में भी काव्य-न्याय का सिद्धांत दिखाई पड़ता है।

२ जिन पदों को गाती हुई मीराँ रणछोर जी की मूर्ति में समा गई थीं वे पद इस प्रकार हैं :—

हरि तुम हरो जन की भीर ॥ टेक ॥
द्रौपदी की लाज राख्यो तुम बढ़ायो चीर ॥ १ ॥
भक्त कारन रूप नरहरि धरयो आप सरीर ॥ २ ॥
हिरनकस्यप मारि लीन्हो धरयो नाहिंन धीर ॥ ३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



विलीन हो गई। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह एक असम्भव घटना प्रतीत होती है। किसी व्यक्ति का अचानक एक पत्थर की मूर्ति में विलीन होना तो कभी देखा नहीं गया परन्तु जब हम मीराँ के सम्पूर्ण जीवन पर विचार करते हैं, उनके माधुर्य भाव की तीव्रता का अनुभव करते हैं, उनके उत्कट विश्वास को ध्यान में लाते हैं, तब अपनी कवित्वपूर्ण प्रतिभा की स्फूर्ति में नाचती-गाती हुई मीराँ का अपने इष्टदेव की मूर्ति में समा जाना ही परम सत्य जान पड़ता है। कम से कम काव्य की दृष्टि से इससे बढ़कर दूसरा कोई सत्य नहीं है।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध वैष्णव कवि महीपति ने अपने काव्य-ग्रंथ 'भक्ति-विजय' ( रचना काल सं० १८२६-२० ) में मीराँ की जो कथा लिखी है वह भौतिक जीवन के सत्य के प्रति एक भारी असंतोष की भावना से पूर्ण है। जिनका अविचल निश्चय था कि :

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥

और जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि

कानुडे न जाणी मोरी प्रीत, बाई हुं तो बाल कुँवारी रे।

उन 'बाल कुँवारी' मीराँ का उदयपुर के राजकुमार भोजराज के साथ विवाह कैसा ? ऐतिहासिक सत्य होने पर भी यह काव्य का सत्य नहीं हो सकता।

---

बूड़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर ॥ ४ ॥
दास मीरा लाल गिरधर दुख जहाँ तहँ पीर ॥ ५ ॥

२

साजन सुध ज्यों जाने त्यों लीजे हो ॥
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे हो ॥
दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा यों तन पल पल छीजे हो ॥
मीरा कह प्रभु गिरधर नागर मिलि बिछुरन नहिं कीजे हो ॥

मीरा जिस मूर्ति में समा गई थी वह मूर्ति ध्रुव डाकोर इलाके गुजरात में है और उनका चीर अबतक भी भगवत भक्तों को रणछोर जी के बगल में निकला हुआ दिखाई देता है।

[ मीराँ बाई का जीवन चरित्र...मु० देवी प्रसाद रचित पृष्ठ २७ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



इसीलिए तो कवि ने मीराँ को कुमारी ही रक्खा है। 'भक्ति-विजय' की कथा के अनुसार मीराँ मेवाड़ के एक परम वैष्णव राणा की कन्या थी। जब कन्या केवल एक दिन की थी, राणा ने उसे भगवान् कृष्ण की मूर्ति के चरणों में डाल दिया। बारहवें दिन उस कन्या का मीराँबाई नाम पड़ा। मीराँ ने बचपन में ही गिरधरलाल की मूर्ति से विवाह कर लिया था। अपने लौकिक विवाह का वह सर्वदा विरोध करती रही। ईश्वरपरायण पिता ने उसका विरोध स्वीकार कर उसका विवाह नहीं किया। परन्तु लोक-निन्दा तो अपना कार्य करती ही रही। मीराँ के कौमार्य तथा साधु-संतों की निरंतर संगत से जनता में भारी असंतोष फैल गया था। अंत में लोक-मत से विवश होकर राणा ने मीराँ का विवाह करने का निश्चय कर लिया, परन्तु मीराँ इसके लिए किसी 'प्रकार भी प्रस्तुत न हुई। और कोई चारा न देख राणा ने रानी द्वारा विष का प्याला मीराँ के लिए भेजा। भगवान् पर अपनी भावनाओं को एकाग्र कर मीराँ अपनी माता के सामने ही हलाहल-पान कर गई। विष-पान का उस पर कोई भी प्रभाव न पड़ा, वरन् गिरधर लाल ( मूर्ति ) का मुख विवर्ण हो गया। राणा को जब ज्ञात हुआ कि उन्होंने अपनी मूर्खता के कारण अपने इष्टदेव भगवान् को ही हलाहल-पान कराया तो उनके दुःख की सीमा न रही। अंत में मीराँ के विनय से भगवान् फिर अपने श्यामल स्वरूप में परिणत हो गए, केवल मीराँ का गौरव चिह्न बनाए रखने के लिए आज भी गिरधरलाल की मूर्ति के कंठ में एक विवर्ण-चिह्न मिलता है।

दूसरी ओर एक बंगाली लेखक ने मीराँ को जो कथा 'भारतीय विदुषी'[१] में लिखी है, उसमें वे केवल भक्त ही नहीं, वरन् शकुंतला की भाँति प्रेम और सौन्दर्य की भव्य प्रतिमा भी हैं; उनकी स्वर लहरी में अद्भुत आकर्षण है; उनका आतिथ्य आदर्श है; वे पुष्प के समान निर्दोष और सती नारियों के समान पति की आज्ञानुवर्तिनी हैं। सारांश यह कि वे आदर्श ईश्वर भक्त

१ रामजी लाल शर्मा द्वारा मूल बंगला से अनुवादित। इस ग्रंथ में भारत की प्रसिद्ध विद्वान् और गुणी स्त्रियों का जीवन चरित्र वर्णित है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



ही नहीं, शील, गुण और सौन्दर्य में भी अद्वितीय हैं; उनमें समस्त कामिनी-जनोचित गुणों और सौन्दर्य का अद्भुत आकर्षण है।

मध्यदेश के कवि-हृदय ने न तो ऐतिहासिक सत्य के प्रति असंतोष प्रकट किया, न मीराँ को आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया, वरन् उसने भागवत से मीराँ की एक उपमा ढूँढ़ निकाली—ब्रज-गोपी। ब्रज की गोपियाँ भी मीराँ के समान विवाहिता थीं, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति उनका स्वकीया का-सा प्रेम था। मीराँ की भक्ति-भावना भी ठीक उसी कोटि की थी। सबसे पहले भक्त कवि नाभादास ने ही यह साम्य ढूँढ़ निकाला था। 'भक्तमाल' में वे मीराँ के सम्बंध में लिखते हैं :—

सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहिं दिखायो।
निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो॥

फिर देव कवि के दो कवित्तों में इस उपमा का कवित्वपूर्ण विकास हुआ। कवि ने मीराँ के मुख से कहलवाया है :—

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो नरलोक, परलोक, वरलोकनि में,
लीन्हीं मैं अलीक लाक-लीकनि ते न्यारी हौ॥

तन जाऊ, मन जाऊ देव गुरुजन जाऊ,
प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावनवारी वनवारी की मुकुट वारी,
पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

कैसी कुलबधू? कुल कैसो? कुलबधू कौन?
तू है यह कौन पूछ काहू कुलटाहि री।
कहा भयो तोहि, कहा काहि तोहि तोहि मोहि,
कीधौं और का ह्वै और कहा न तो काहि री॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जाति ही ते जाति कैसी जाहि को है जाति चेरी,
तो सों हौं रिसानी मेरी मो सों न रिसाहि री।
'लाज गहु, लाज गहु'-लाज गहिबे को रही,
पंच हँसिहैं री हौं तो पंचन तें बाहिरी॥

परंतु इतने से भी जनता के कवि-हृदय को संतोष न हुआ। अस्तु, सादृश्य की इस भावना को और आगे बढ़ाकर उसने मीराँ को ब्रज-गोपी का अवतार-निश्चित किया। मीराँ के नाम से प्रसिद्ध कितने ही पदों में इस बात की ओर संकेत मिलता है। यथा :—

मेरे प्रीतम प्यारे राम ने लिख भेजूँ री पाती॥ टेक॥
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हो, जान बूझ गुरु बाती॥
× × × × × ×
तुम देखयाँ बिन कल न परत है, हियो फटत मोरी छाती॥
मीरा कहे प्रभु कब रे मिलोगे पूर्व जनम के साथी॥

[ मी० शब्दा० वे०प्रे० पृ० २१ ]

और भी राणा जी म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं क्या करूँ।

राम नाम बिन घड़ी न सुहावे, राम मिले मेरा हियरा ठराय॥

[ मी० शब्दा० पृ० ३५ ]

और भी हे ली म्हाँसू हरि बिन रह्यो न जाय।

× × × ×
पूर्व जन्म की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर और न आवे म्हाँरी दाय॥

[मी० शब्दा० पृ० ३८ ]

और एक पद में तो स्पष्ट रूप से लिखा मिलता है कि

पूरब जनम की मैं हूँ गोपी का अधबिच पड़ गयो झोलो रे।
तेरे कारण सब जग त्यागो, अब मोहे कर सों लो रे॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोलो रे॥

[ राग कल्पद्रुम प्रथम भाग पृ० ३२७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



इतना ही नहीं इस बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में भी गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक काका साहब कालेलकर ने मीराँबाई को राधा जी का अवतार माना है। 'जन्माष्टमी का उत्सव' नामक निबंध में वे लिखते हैं—"गोपिकाओं के प्रेम को मीराँबाई ने स्पष्ट कर दिखाया है। जब-जब धर्म पर से लोगों की श्रद्धा हट जाती है, तब तब उसको फिर से स्थिर कर देने के लिए मुक्त पुरुष इस विश्व में अवतार धारण करते हैं, और अपने प्रत्यक्ष अनुभव और जीवन के द्वारा लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। इसी तरह जब लोगों को गोपियों की शुद्ध भक्ति के विषय में अश्रद्धा उत्पन्न हुई, तब गोपियों में से एक ने—शायद राधा जी ने—मीराँबाई का अवतार लेकर प्रेमधर्म की स्थापना की।"

[जीवन साहित्य प्रथम भाग प्र० संस्करण सन् १९२७ जन्माष्टमी का उत्सव पृ० ३८]

यदि कवि-हृदय ने मीराँ को अवतार निश्चित किया तो भक्तों ने उन पर देवत्व का आरोप किया और उनके सम्बंध में अलौकिक और अतिमानुषिक प्रसंगों का प्रचार किया। मीराँ के नाम से प्रसिद्ध पदों में पिटारे में भेजा हुआ साँप कभी शालिग्राम की मूर्ति बन जाता है, कभी चंदनहार बन कर महलों में उजाला करता है; सूल सेज मीराँ के लिए पुष्प शैया और विष का प्याला साकार अमृत बन जाता है। मुं० देवीप्रसाद ने लिखा है कि कोई लोग यह कहते हैं कि राणा ने मीराँ के लिए जो विष का प्याला भेजा था उस विष का मीराँ पर कुछ असर न हुआ बल्कि द्वारिका जी में रणछोर जी के मुँह से झाग निकले थे[1]। एक पद ऐसा भी मिलता है कि विष का प्याला पीकर मीराँ सो जाती हैं और उन्हें जगाने के लिए गरुड़ पर चढ़कर स्वयं उनके श्याम आते हैं :—

राणें जी विषरा प्याला मोकल्या दीजो मीरा रे हाथ।
मैं तो चरणामृत कर पी गई अब थे जाणें म्हाँरा नाथ॥
मीरा विष का प्याला पी गई, सोती खूँटी तान।
म्हाँरो दरद दिवाणा साँवरो म्हाँने दौड़ जगावे आन॥

१ मीराँबाई का जीवन चरित्र पृ० १४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



गरुड़ चढ़ि हरि अब आए मीरा के पास।
आनँद तूर बजाइ के पूरी मन की आस॥

[ राग कल्पद्रुम द्वितीय भाग पृ० ६७१ ]

'माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर' ( Milestones in Gujarati Literature ) के रचयिता कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने गुजरात में प्रचलित जनश्रुति के आधार पर लिखा है कि जब राणा ने देखा कि मीराँ पर विष का कुछ भी प्रभाव न पड़ा तब उन्होंने स्वयं तलवार से मीराँ का अंत करना चाहा, परंतु उनके तलवार उठाते ही एक साथ चार-चार मीराँबाई दिखाई पड़ीं और वे निश्चय ही न कर सके कि वास्तविक मीराँ कौन सी हैं। मेकालिफ़ (M. Macaulif) ने 'द लीजेंड आव मीराँबाई' (The Legend of Mira Bai) में लिखा है कि राणा ने मीराँ को तलवार के घाट उतारना चाहा, परंतु क्षत्रिय होकर अबला की हत्या करना महापातक समझ कर मीराँ को तालाब में डूब मरने की आज्ञा दी। सर्वदा बड़ों की आज्ञानुवर्तिनी मीराँ अपने गिरधर लाल का ध्यान करती हुई पुष्कर में कूद पड़ीं, परंतु वहाँ भी वे डूब न सकीं, एक दिव्य पुरुष ने उन्हें पुष्कर के किनारे लगा दिया और आज्ञा दी कि वृंदावन जाकर भगवान कृष्ण का गुणगान करें। कुछ जनश्रुतियों के अनुसार वे दिव्य पुरुष स्वयं मीराँ के गिरधर नागर थे इसी प्रकार गिरधर लाल की मूर्ति की प्राप्ति तथा मीराँ और गिरधर लाल के विवाह के सम्बंध में भी अलौकिक कथाएँ प्रचलित हैं। इन जनश्रुतियों के पीछे देवीकरण (Deification) की भावना काम करती दिखाई पड़ती है।

कवित्व और देवत्व के आरोप के अतिरिक्त कुछ ऐसी जनश्रुतियाँ भी प्रचलित हैं जिनमें लौकिक भावना प्रधान है। इन जनश्रुतियों में सत्य और असत्य का कुछ ऐसा सम्मिश्रण है कि उन पर सहसा विश्वास करना भी उचित नहीं है और असत्य कह कर उनकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। अतः स्थान, काल और पात्र की संगति मिलाकर उनका पूर्ण विवेचन किए बिना कुछ कहना ठीक नहीं है। मीराँ के सम्बंध में ऐसी कितनी ही जनश्रुतियों का प्रचार है जिनमें मुख्य चार जनश्रुतियों का यहाँ विवेचन किया जायगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सबसे पहले तानसेन को साथ लेकर मुगल-सम्राट् अकबर का मीराँ के दर्शन के लिए मेवाड़-गमन की कथा पर विचार करना है। इस जनश्रुति का प्राचीनतम उल्लेख प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका में मिलता है :

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये
लिये संग तानसेन देखिबो को आयो है।
निरखि निहाल भयो छबि गिरधारी लाल,
पद सुखजाल एक तब ही चढ़ायो है॥

बाद में रघुराजसिंह कृत 'भक्तमाला' में इसका बहुत अधिक विस्तार मिलता है जो सबका सब अलौकिक और असत्य है। मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार अकबर सं० १६२४ में मेवाड़ पर चढाई करनेके लिए ही पहले-पहल वहाँ गया था और सं० १६२० के लगभग सम्राट् ने रामचंद्र बघेला से तानसेन को प्राप्त किया था। अतएव सं० १६२० से पहले अकबर का तानसेन के साथ मेवाड़ जाना असम्भव ही था। परंतु जहाँ तक खोज हुई है, उससे यह निश्चित है कि मीराँ इस समय से बहुत पहले ही, सम्भवतः अकबर के जन्म (सं० १५९९) से भी पहले मेवाड़ छोड़ चुकी थीं और उस समय द्वारका में निवास करती थीं। अस्तु, स्थान और काल की दृष्टि से यह जनश्रुति असंगत ठहरती है। कुँवर कृष्ण ने अपने निबंध[1] में यह अनुमान लगाया है कि सम्राट् अकबर ने मेवाड़ में नहीं गुजरात (द्वारका) में जाकर सं० १६२९ में मीराँ का दर्शन किया था, परन्तु यह जनश्रुति के विरुद्ध है और केवल अनुमान मात्र है। अकबर ने मीराँ के दर्शन के लिए कभी मेवाड़-यात्रा नहीं की और न कभी उनके दर्शन ही किए। प्रियादास ने जो लिखा है वह सम्भवतः असत्य नहीं भी हो सकता, परन्तु इस जनश्रुति में सत्य की मात्रा लेश मात्र भी नहीं है। यदि प्रियादास के उपर्युक्त कवित्त का अर्थ यह है कि मीराँ की रूप की निकाई देखने के लिए तानसेन के साथ सम्राट् अकबर मेवाड़ आया था, तो यह असत्य ही नहीं उपहासास्पद भी है क्योंकि अकबर जब पैदा हुआ

१ परिषद् निबंधावली द्वितीय भाग (प्रकाशक हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय) प्रथम निबंध।



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



(सं० १५९६) था, उस समय मीराँ की अवस्था चालीस वर्ष की थी और जिस समय मुगल-सम्राट् ने किसी कामिनी की रूप की निकाई देखने की इच्छा उत्पन्न होने की अवस्था प्राप्त की होगी, उस समय मीराँ यौवन की अंतिम सीढ़ी पार कर साठ वर्ष की वृद्धा हो गई होंगी। अतः साठ वर्ष की वृद्धा मीराँ की रूपकी निकाई देखने के लिए बीस वर्षीय अकबर का गुप्त वेश में मेवाड़ जैसे सुदूर प्रवेश की यात्रा करना हास्यास्पद नहीं तो और क्या है? उपर्युक्त कवित्त का एक दूसरा यह अर्थ भी हो सकता है कि सम्राट् अकबर मीराँ के इष्टदेव गिरधर लाल के रूप की निकाई देखने आया था और उसने वही देखा भी जैसा कि दूसरे चरण से स्पष्ट है कि भूप गिरधर लाल कि छबि देखकर निहाल हुआ और मीराँ के इष्टदेव गिरधर लाल की मूर्ति के चरणों में एक सुखजाल भेंट चढ़ाया। जान पड़ता है कि सं० १६२४ में मेवाड़-विजय के उपरांत चित्तौर के रक्षक वीरश्रेष्ठ जयमल (जिसकी वीरता ने सम्राट् को मुग्ध कर रखा था) की बहन मीराँबाई की अद्भुत कीर्ति-गाथा सुनकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करने के निमित्त गुणग्राही अकबर मीराँ के नाम से प्रसिद्ध मंदिर में उनके इष्टदेव की मूर्ति के दर्शन के लिए गया होगा और उसी के आधार पर जनता में यह प्रसिद्धि हो गई होगी कि सम्राट् अकबर मीराँ के दर्शनों के लिए आया था।

सम्राट् अकबर का भक्तों के दर्शन के लिए गुप्त वेश में यात्रा करने की और भी कितनी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। महात्मा हरिदास के दर्शन के लिए तानसेन के साथ मुगल सम्राट् का निधुवन जाना प्रसिद्ध ही है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में बादशाह अकबर का गोविन्द स्वामी का गाना सुनने के लिए गोकुल में यशोदा घाट पर जाने और उनका भैरव राग सुनने की कथा मिलती है[1] और छीतस्वामी की वार्ता में बादशाह अकबर का छिपकर जन्माष्टमी के पालना का दर्शन करने गोकुल में

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (डा० वेर संस्करण सं० १९०६) गोविन्द स्वामी की वार्ता। प्रसंग १५। पृष्ठ ११

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आने का प्रसंग मिलता है[1]। इन सब जनश्रुतियों में सत्य की मात्रा लेश भर भी नहीं है, केवल भक्तों के महत्व-प्रदर्शन के लिए ये गढ़ लिए गए हैं।

मीराँबाई और जीव गुसाईं के संबंध में जो कथा प्रचलित है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें मीराँ के गूढ़ और रहस्यमय सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या मिलती है। इस कथा के अनेक रूप प्रचलित हैं[2]। परन्तु सबसे प्रचलित कथा यह है कि मीराँ वृन्दावन में भक्त शिरोमणि जीव गोस्वामी के दर्शन के लिए गईं। गोस्वामी जी सच्चे साधु थे और स्त्रियों की छाया तक से भागते थे, इसलिए भीतर से ही कहला भेजा कि हम स्त्रियों से नहीं मिलते। इस पर मीराँबाई ने उत्तर दिया कि मैं तो समझती थी कि वृन्दावन में श्रीकृष्ण ही एक पुरुष हैं, परन्तु यहाँ आकर जान पड़ा कि उनका एक और प्रतिद्वंद्वी पैदा हो गया है। मीराँ का ऐसा माधुर्य-भाव संयुक्त प्रेमपूर्ण उत्तर सुनकर जीव गुसाईं नंगे पैर बाहर निकल आए और बड़े ही प्रेम से उनसे मिले। इस कथा का भी उल्लेख सबसे पहले प्रियादास के कवित्तों में मिलता है। यथा :

---

१ 'सो भी वृंदावन वैष्णवन का वार्ता' (डाकोर संस्करण सं० १९६० श्री स्वामी की वार्ता प्रसंग ३। पृ० १९।

२ मु० देवीप्रसाद 'मीराबाई का जीवन चरित्र' पृ० २९ पर इस कथा को इस प्रकार लिखते हैं। (मीराँ), एक दफे मथुरा होकर वृन्दावन को गईं और वहां एक ब्रह्मचारी बोला कि मैं स्त्री का मुँह नहीं देखता हूँ, मीराँबाई ने कहा वाह महाराज अभी तक स्त्री पुरुष में ही उलझे हैं अर्थात् सम दृष्टि नहीं हुए हैं।' (यह ब्रह्मचारी और कोई नहीं, मीराँ प्रसिद्ध जीव गोस्वामी जी हैं।)

श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी रूपकला अपने ग्रन्थ 'श्री मीराबाई जी' में पृ० ४३-४४ पर लिखते हैं कि मीराबाई ने प्रसिद्ध महात्मा रूप तथा सनातन गोस्वामी के दर्शन किए और जीव गोस्वामी के दर्शनों की अभिलाषा प्रकट की। परंतु जब सुना कि वे स्त्रियों का मुख देखना तो दूर रहा उन्हें अपने आश्रम में घुसने तक नहीं देते, तब उन्होंने एक पत्रिका लिख भेजी कि " श्री वृन्दावन तो श्री बिहारी जी का रङ्गमहल रहस्यकुञ्ज है, और वास्तव में यहां तो सब की सब केवल स्त्रियां ही हैं। 'पुरुष' तो एक व्रजविहारी श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द महाराज मात्र ही हैं। आप विख्यात

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



वृन्दाबन आई जीव गुसाईं जू सो मिल मिली,
तिया मुख देखिबो को पन लै छुटायो है।

और नाभादास के छप्पय में भी इसका संकेत मिलता है जब कि वे कहते हैं :

भक्ति निसान बजाय के काहू ते नाहिंन लजी।

और गौड़ीय वैष्णवों में भी इस जनश्रुति का प्रचार है; अंतर केवल इतना ही है कि वहां जीव गोस्वामी के स्थान पर उनके चाचा रूप गोस्वामी का नाम लिया जाता है। शिशिर कुमार घोष रचित 'लार्ड गौरांग आँर सैल्वेशन फार आँल' ( Lord Gaurang or Salvation for All ) के प्रथम भाग की भूमिका पृ० ४० पर लिखा है :

जब राजपूत राजकुमारी मीराबाई, जिन्होंने भगवान कृष्ण के प्रेम में सब कुछ त्याग दिया था, श्री गौरांग ( चैतन्य महाप्रभु) के एक प्रमुख भक्त वृन्दाबन निवासी प्रख्यात रूप गोस्वामी के दर्शन के लिए गईं तो एक श्रेष्ठमत संन्यासी होने के नाते रूप गोस्वामी ने उनसे मिलना इस कारण अस्वीकार कर दिया कि उन्हें किसी स्त्री का मुख देखने का अधिकार न था। वस्तुतः मीराबाई एक परम सुन्दरी युवती राजकुमारी थीं और मीरा की भक्ति भावना में उन्हें अधिक विश्वास न था। रूप गोस्वामी का संदेश सुनकर 'मीरा ने उत्तर दिया' 'तब क्या वे पुरुष हैं। यदि ऐसा है तो उन्हें वृन्दाबन में घुसने का कोई अधिकार नहीं। पुरुषों का यहाँ प्रवेश नहीं है। यदि वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी को उनकी यहां उपस्थिति की सूचना मिल

---

विवेकी विश महात्मा होते हुए भी अपने आपको यदि पुरुष मानते हों तो यों जो श्री अन्तःपुरी में आपने स्थान अधिकार किया है, इस निडर साहस की इस आश्चर्यमय धृष्टता की सूचना स्वामिनी श्री राधिका महारानी जी की सेवा में अभी अभी क्यों नहीं पहुँचाई जावे ? सो आप शीघ्रतर बताने की कृपा कीजिये कि सच ही आप अपने तई पुरुष मानते हैं ?" इस पत्रिका को पढ़कर गोस्वामी जी की समझ में आगया कि मीरां कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं; वरन् द्वापर की गोपी की अवतार है। तत्काल ही जीव गुसाई नङ्गे पांव चलकर मीराबाई जी से आ मिले।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जाएगी तो वे उन्हें यहाँ से निर्वासित कर देंगी। क्या गोस्वामी महात्मा यह नहीं जानते कि समस्त विश्व में एक ही पुरुष हैं और वे मेरे प्रियतम कृष्ण-कन्हैया हैं और उनके अतिरिक्त सभी नारी हैं।' अब रूप गोस्वामी को विदित हो गया कि मीराँबाई वस्तुतः कृष्ण की परम भक्त हैं और उन्होंने उनसे मिलना स्वीकार किया।"[1]

स्थान और काल की दृष्टि से विचार करने पर मीराँ और जीव गोसाईं की इस जनश्रुति में कोई असंगति नहीं दिखाई पड़ती क्योंकि मीराँबाई का वृंदावन जाना और वहाँ कुछ दिनों निवास करना प्रमाणित ही है और उस समय वृंदावन में जीव गोसाईं भी उपस्थित थे और उनकी विद्वत्ता की कीर्ति भी फैल रही थी। परंतु वास्तविक असंगति पात्र की दृष्टि से विचार करने पर प्रकट होती है। जीव गोसाईं अवस्था में मीराँ से बहुत छोटे थे। डा० सुशील-कुमार डे ने संस्कृत काव्य-शास्त्र के इतिहास में लिखा है कि बंगाल में ऐसी प्रसिद्धि है कि जीव गोस्वामी का जन्म शाके १४४५ ( सं० १५८० ) और

1 When Mirabai, the Rajput princess, who left everything for her love for Krishna, visited the renowned Rupa Goswami of Vrindaban, one of the chief Bhaktas of Shree Gaurang ( Chaitanya ), Rupa, an ascetic of the highest order, refused to see her on the ground that he was procluded from seeing the face of a woman. As a fact. Mirabai was a most beautiful young princess and he had not much faith in her pretensions Hearing the message of Rupa, Mirabai replied. Is he then a male ? If so, he has no access to Vrindaban. Males cannot enter there, and if the goddess of Vrindaban comes to know of his presence, she will turn him out. For does not the great Goswami know that there is but one male in existence, namely my belovedKanai Lal and that all besides are female ?' Rupa now understood that Mira was really a staunch devotee of Krishna and so agreed to see her.
(Lord Gaurang or Salvation for All,Vol.I Introduction page40)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मृत्यु शाके १५४० ( सं० १६७५ ) में हुई थी।[1] कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत है कि उनकी जन्म तिथि सं० १५७० है। चाहे जो भी हो जीव गोस्वामी का जन्म समय सं० १५७० से पहले नहीं बाद में ही पड़ता है और इस प्रकार वे मीराँ से दश अथवा उससे भी कुछ अधिक वर्ष छोटे प्रमाणित होते हैं। फिर मीराँ जब वृंदाबन गई थीं उस समय उनकी अवस्था भी चालीस वर्ष से कम ही थी। अतः तीस वर्ष से भी कम अवस्था वाले संन्यासी के दर्शन के लिए चालीस वर्ष की प्रौढ़ वयस्का भक्त का जाना कुछ असंगत सा जान पड़ता है जब कि उसी समय और उसी स्थान पर जीव के दोनों परम विख्यात भक्त और विद्वान् चाचा रूप और सनातन भी उपस्थित थे। यह सच है कि आगे चलकर जीव गोस्वामी विद्वत्ता, भक्ति और कीर्ति तीनों ही में अपने दोनों चाचा से बाजी मार ले गए थे, परंतु जिस समय (सं० १५६६—१६००) मीराँ वृंदाबन में थीं उस समय जीव एक नवयुवक संन्यासी मात्र थे और रूप, सनातन पचास वर्ष के प्रौढ़ भक्त और प्रख्यात विद्वान् थे। अतः मीराँबाई का रूप गोस्वामी के दर्शनों के लिए जाना अधिक सुसंगत और सम्भव जान पड़ता है जैसा कि शिशिरकुमार घोष ने लिखा है। जान पड़ता है कि जीव गोस्वामी की अधिक कीर्ति फैलने के कारण ही रूप के स्थान पर जीव का नाम प्रचलित हो गया।

मीराँबाई और गोसाईं तुलसीदास के बीच जो परमार्थी पत्र-व्यवहार की कथा प्रसिद्ध है वह न तो प्रियादास की टीका में ही मिलती है और न रघुराज सिंह कृत 'भक्तमाल' में ही उसका उल्लेख है। जान पड़ता है कि 'गोसाईं-चरित', के रचयिता बाबा वेणीमाधव दास ने ही पहले पहल इसकी कल्पना की। 'गुसाईं-चरित' में लिखा है:—

---

1- A tradition in Bengal gives Saka 1445 (1523 A. D.) and Saka 1540 (1618 A. D.) as the dates of his (Jive-Goswami's) birth and death respectively.
(History of Sanskrita poetics Vol. I pages 255–256- Ist ed-1923.)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सोरह से सोरह लगे, कामद गिरि ढिग वास।
सुचि एकांत प्रदेस महँ, आये सूर सुदास॥
× × × × × ×
लै पाति गये जब सूर कबी। उर में पधराय के स्याम छबी
तब आयो मेवाड़ ते, विप्र नाम सुखपाल।
मीराबाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रवाल॥
पढ़ि पाती, उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय।
सब तजि हरि भजिबो भलो, कहि हिय विप्र पठाय॥

अर्थात् मीराँबाई का पत्र लेकर सुखपाल नामक ब्राह्मण सं० १६१६ में मेवाड़ से आया। पीछे मीराँबाई ने पत्र में क्या लिखा[1] और गुसाईं तुलसीदास ने उसके उत्तर में क्या लिख भेजा[2] यह भी निश्चित रूप से पता लगा लिया

---

१ मीराँबाई का पत्र इस प्रकार का कहा जाता है :

श्री तुलसी सुखनिधान, दुख हरन गुसाईं।
बारहि बार प्रणाम करूँ, अब हरो सोक समुदाईं॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरु भजन करत, मोहि देत कलेस महाई॥
बालपने तें मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखियो समुझाई॥

२ मीराँ के पत्र के उत्तर में गुसाईं तुलसीदास ने निम्नलिखित पद लिखा था।

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनिता, भये सबै मङ्गलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अञ्जन कहा आंख जो फूटै, बहुक कहौं कहां लौं॥
तुलसी सों सब भांति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



गया। परन्तु इस पत्र-व्यवहार की सत्यता पर विश्वास करना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है। बाबा बेणीमाधव दास ने अपने चरित-नायक की महत्ता प्रमाणित करने के लिए उस युग के सभी लब्धप्रतिष्ठ भक्तों और कवियों का तुलसी से संबंध स्थापित करने के लिए कथाएँ गढ़ी हैं जिनमें लगभग सभी की सभी स्थान, काल और पात्र की दृष्टि से विचार करने पर असंगत और असम्भव जान पड़ती है। महाकवि केशवदास एक ही रात में राम-चंद्रिका जैसे बृहत् महाकाव्य की रचना करके अस्सी घाट पर गुसाईं जी के दर्शन के निमित्त आते है; मुसलमान कवि रसखान को तीन वर्ष तक 'मानस' की कथा सुननी पड़ती है; टट्टी सम्प्रादाय के प्रवर्तक भक्त शिरोमणि महात्मा हरिदास को गुसाईं जी से अपना पद शुद्ध कराने निधुवन और वृन्दावन छोड़कर अयोध्या आना पड़ता है और इतना ही नहीं स्वयं महात्मा सूरदास को ७६ वर्ष की बृद्धावस्था में अधेपन और बुढ़ापे की उपेक्षा कर अपना सूरसागर दिखाने अपने से अवस्था में बहुत छोटे तुलसीदास जी के यहाँ काशी आना पड़ता है। मेवाड़ जैसे सुदूर प्रांत में रहने अथवा मेवाड़ राजवंश की कुलवधू होनेके कारण ही मीराँ पर बाबा जी की कुछ विशेष कृपा हुई कि उन्हें स्वयं परामर्श लेने काशी नहीं आना पड़ा, वरन सुखपाल विप्र द्वारा एक पत्रिका भेज कर ही वे छुट्टी पा गईं। सारांश यह कि सूर, मीराँ, हरिदास, केशव, रसखान और सम्राट् अकबर आदि सभी से गुसाईं तुलसीदास को श्रेष्ठतर और महत्तर प्रमाणित करने के लिए ये सब कथाएँ गढ़ ली गई हैं, पर इनमें सत्य की मात्रा लेश भर भी नहीं हैं।

स्थान, काल और पात्र की दृष्टि से विचार करने पर यह जनश्रुति असत्य और असंगत ठहरती है। यदि सच ही मीराँबाई को कभी ऐसे पत्र भेजने की

---

कुछ लोगों का मत है कि इस पद के साथ निम्न लिखित सवैया भी गुसाईंजी ने लिखा था

सो जननी सो पिता सोइ भ्रात, सो भामिन सो हित मेरो।
सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक, सो गुरु सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहां लौं बताइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि गेह को देह को नेह, सनेह सों राम को होय सबेरो॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आवश्यकता पड़ी होगी, जैसा कि जनश्रुति में प्रसिद्ध है, तो वह समय सं० १५६० के आसपास अथवा उससे पहले ही हो सकता था जब कि उनके देवर राणा विक्रमादित्य का अमात्य वीजावर्गी उनपर अनेक अत्याचार कर रहा था। सं० १५६१ के पहले ही मीराँ ने मेवाड़ त्याग दिया था क्योंकि उस वर्ष चित्तौड़ में जो साका हुआ था उसमें मीराँबाई न थीं। अतः इस पत्र का समय अधिक से अधिक सं० १५६१ हो सकता है, परंतु 'गुसाईं-चरित' में यह तिथि १६१६ दी गई है जब कि मीराँ सम्भवतः मेवाड़ में थी भी नहीं। यदि यह भी मान लिया जाय कि सं० १५६०-६१ के आसपास मीराँ ने कोई पत्र भेजा था तब भी इस जनश्रुति की संगति नहीं बैठ पाती क्योंकि उस समय तक तुलसीदास पैदा ही हुए थे, क्योंकि विद्वानों ने बहुमत से उनका जन्म सं०१५८९ स्थिर किया है। यदि तुलसीदास जी का जन्म सं०१५५४ भी मान लिया जाय जैसा कि बाबा बेणीमाधव दास ने लिखा है तब भी सं०१६६० तक उन्होंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया था जिससे मेवाड़ जैसे सुदूर प्रांत में उनकी कीर्ति पहुँच सके। यदि मीराँ को सचमुच ही ऐसा पत्र भेजना था तो वे पास ही में महाप्रभु वल्लभाचार्य, गुसाईं विट्ठलनाथ, महात्मा सूरदास, गुसाईं हित हरिवंश, श्री हरिदास अथवा ऐसे ही किसी और महात्मा के पास भेज सकती थी जिन्होंने उस समय तक काफी कीर्ति प्राप्त कर ली थी और मेवाड़ के पास ही ब्रज-मंडल के निवासी थे। कुंवर कृष्ण ने बाबा वेणीमाधव दास के कथन को सत्य और सुसंगत प्रमाणित करने के लिए अपने निबंध 'मीराँबाई-जीवन और कविता'[1] में यह अनुमान लगाया है कि 'जब ब्रज-भूमि में मुगल पठानों के रण-वाद्य बजने लगे तो सम्भवतः सं०१६१२-१३ के आसपास (मीराँ) पुनः चित्तौर की ओर रवाना हुई।..... सम्भवतः इसी समय उन्होंने सुखपाल के हाथ पत्रिका भेजी होगी जो उन्हें ( गुसाईं तुलसीदास जी को ) सं०१६१६ के बाद मिल सकी थी।' इस अनुमान में कुछ भी सत्य नहीं है क्योंकि मीराँ वृंदावन से सीधे द्वारका चली गई थीं। उनके फिर मेवाड़ लौट आने का

१ परिषद् निबंधावली द्वितीय भाग (हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित) प्रथम निबंध।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



कोई प्रमाण नहीं मिलता। यदि यह भी मान लिया जाय कि सं० १६१२-१३ के आसपास मीराँ फिर मेवाड़ लौट आई थीं, तब भी उनपर 'स्वजनों' द्वारा अत्याचार किये जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे प्रेरित होकर वे इस प्रकार का पत्र गुसाईं जी के पास भेजतीं। जैसा कि आगे चलकर विचार किया गया है, सं० १६११ में चित्तौड़ में मीराँ के गिरधर नागर की मूर्ति प्रतिष्ठित कराई गई थी, फिर उनके साथ दुर्व्यवहार कैसे हो सकता था। सारांश यह कि ये सभी अनुमान असंगत हैं और मीराँबाई के परमार्थी पत्र-व्यवहार में लेश मात्र भी सत्य नहीं है, केवल गुसाईं तुलसीदास की महत्ता प्रमाणित करने के लिए उनके भक्तों द्वारा कल्पित जान पड़ती है।

इसी प्रकार मीराँ के रैदास की शिष्या होने की जनश्रुति भी केवल रैदास की महत्ता बढ़ाने के लिए गढ़ी जान पड़ती है। इस जनश्रुति का मूल आधार मीराँ के नाम से प्रसिद्ध कुछ स्फुट पद हैं:—

१. मेरो मन लागो हरि जी सूं, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी[1] ॥
[ मी० श०दा० वे० प्रे० पृ० २५ ]

२. गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आकैं, जोत में जोत रली ॥

३. रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु दीन्हा सुरति सहदानी!

४. मीरा ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिलया रैदास ॥

और गुजरात में मीराँ का एक पद प्रसिद्ध है:—

झाँझ पखावज वेणु बाजिया, झालरनो झनकार।
काशी नगर ना चोक मा मने गुरु मिलिया रोहिदास ॥

परंतु प्रियादास की टीका में मीराँ को रैदास की शिष्या नहीं लिखा गया है, वरन् उनकी पितामही सास राणा सांगा की माता झाली रानी रत्नकुंवरि को प्रियादास ने संत रैदास की शिष्या[2] लिखा है। यदि मीराँ भी रैदास की शिष्या

१ घूंट। २ बसन्त चितौर मांझ रानी एक झाली नाम, नाम बिन काम खाली, आनि शिष्य भई है।" प्रियादास की टीका में रैदास के सम्बंध में मिलता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



होतीं तो प्रियादास इसका उल्लेख करना कभी न भूलते। रघुराजसिंह रचित 'भक्त-माला' में भी मीराँ रैदास की शिष्या नहीं हैं, केवल इन पदों में ही मीराँ रैदास की शिष्या जान पड़ती हैं जो सम्भवतः रैदास के शिष्यों की रचनाएँ हैं। गुजरात में रविदासी सम्प्रदाय का बहुत अधिक प्रभाव पहले भी था और अब भी है। जब मीराँबाई की कीर्ति गुजरात में बहुत अधिक फैलने लगी—क्योंकि गुजरात में मीराँ के पदों का उतना ही प्रचार है जितना संयुक्त प्रांत में तुलसी और सूर के पदों का—तब अपने गुरु का महत्व घोषित करने के लिए रैदास के शिष्यों ने सम्भवतः मीराँ के नाम से इस प्रकार के पद लिखकर प्रचलित करा दिए।

स्थान और काल की दृष्टि से मीराँ रैदास की शिष्या नहीं हो सकतीं। रैदास काशी के निवासी और संत कबीर के समकालीन थे और उनका समय सं० १४५५ से १५७५ के आसपास माना गया है। रैदास की मृत्यु के समय मीराँ की अवस्था अधिक से अधिक १८ वर्ष की हो सकती थी और उस समय तक उनके पतिदेव भी जीवित थे। अतः सं० १५७५ के पहले तक मीराँ का काशी के चौक में संत रैदास को गुरु रूप में प्राप्त करना असम्भव जान पड़ता है और १२० वर्ष की वृद्धावस्था में रैदास का काशी से मेवाड़ की यात्रा करना तो एक दम असम्भव कल्पना है। अस्तु, स्थान और काल के विचार से मीराँ और रैदास का एक दूसरे के सम्पर्क में आना सम्भव ही नहीं था। फिर सिद्धांत की दृष्टि से मीराँ रैदास की शिष्या नहीं हो सकतीं। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से स्पष्ट है कि मीराँ की प्रकृति बहुत ही स्वतंत्र और उदार थी। कितना ही प्रयत्न करने पर भी वल्लभाचार्य के शिष्य उन्हें अपने साम्प्रदाय में न ला सके थे। सच तो यह है कि मीराँ की भक्ति-भावना साम्प्रदायिकता की सीमा से बहुत परे थी। यह सम्भव है कि अपनी उदार और विनम्र भावना के कारण उन्होंने सभी सम्प्रदाय वालों की सत्संगति की होगी और बहुत सम्भव है कि अपनी पितामही सास झाली रानी के पास आने जाने वाले रैदास के शिष्यों के सम्पर्क में भी वे आई हों, और उनसे प्रभावित भी हुई हों, परंतु किसी सम्प्रदाय-विशेष अथवा गुरु विशेष की शिष्या बनकर रहना उनकी प्रकृति के अनुकूल न था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मीराँ के संबंध में और भी कितनी जनश्रुतियाँ प्रचलित है। ये सभी कथाएँ न जाने किन-किन प्रशस्त और संकीर्ण भावनाओं से प्रेरित होकर लिखी गई थीं कि इनमें सत्य और असत्य, देवत्व और मनुजत्व, कवित्व और अकवित्व की परस्पर विरोधी भावनाओं का सम्मिश्रण मिलता है। एक ओर तो मीराँ भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्य प्रेमिका, रास निपुणा ब्रज-गोपी की अवतार मानी जाती हैं, दूसरी ओर काशी नगर के चौक में संत रैदास को अपना गुरु बनाती हैं; एक ओर तो साक्षात् गरुड़ वाहनारूढ़ भगवान् श्रीकृष्ण ही उन्हें जगाने के लिए आते हैं, दूसरी ओर उन्हें एक साधारण-सा परामर्श लेने के लिए सहस्रों मील दूर काशी को पत्र-वाहक दौड़ाना पड़ता है। अस्तु, सभी जनश्रुतियों पर सहसा विश्वास कर लेना बुद्धिमान व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। उन्हें स्थान, काल, पात्र की कसौटी पर कसकर स्वीकार करना चाहिए।

४

**आधुनिक खोज**—मीराँबाई के जीवन चरित्र सम्बंधी सब से उपयोगी सामग्री आधुनिक काल के खोजों में प्राप्त हुई है। मीराँबाई के पितृकुल, श्वसुरकुल तथा उनके जीवन-चरित के सम्बंध में जनश्रुतियाँ बिलकुल ही मौन थीं; आधुनिक खोज से इन पर पूर्ण प्रकाश पड़ा। राजस्थान के इतिहास के साथ ही साथ मीराँबाई का इतिहास भी आधुनिक युग की खोज है, जिसका प्रथम सम्बद्ध रूप कर्नल जेम्स टाड (Colonel James Todd) ने अपने 'एनाल्स ऐन्ड ऐन्टीक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान' (Annals and Antiquities of Rajasthan) में उपस्थित किया। इस अपूर्व ग्रंथ में राजपूती वीरता और गौरव का सच्चा रूप तो अवश्य मिलता है, परंतु इसमें कुछ ऐतिहासिक भ्रांतियाँ भी मिलती हैं; मीराँबाई का इतिहास इसका एक उदाहरण है। मेवाड़ के पराक्रमी राणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) ने अपनी अनेक विजयों के उपलक्ष में एक जयस्तम्भ अथवा कीर्तिस्तम्भ बनवाया था। उसी के पास एक ही ऊँची कुर्सी पर आदि वाराह और कुम्भस्वामी के दो मंदिरपास ही पास

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



बने मिलते हैं; इनमें बड़ा आदि वाराह का मन्दिर राणा कुम्भा का और छोटा कुम्भस्वामी का मन्दिर मीराँबाई का कहा जाता है। सम्भवतः इसी के आधार पर कर्नल टाड ने मीराँ को राणा कुम्भा की रानी स्थिर किया।[1] टाड ही के आधार पर गजेटियर में भी मीराँबाई रावदूदा जी की पुत्री और राणा कुम्भा की रानी लिखी गई है;[2] और हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक शिवसिंह सेंगर[3] तथा मीराँ के प्रथम जीवन चरित लेखक कार्तिकप्रसाद खत्री ने भी मीराँबाई को राणा कुम्भा की रानी माना था। इस भ्रांति के निराकरण होने के बहुत दिनों बाद तक लोगों को इस बात पर विश्वास बना रहा कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने १९१४ ई० तक में (यद्यपि १८९८ में मुं० देवीप्रसाद ने इसभ्रांति का निराकरण कर दिया था) मीराँ को राणा कुम्भा की रानी माना है और उसका समय स० १४६० से १५२७ तक स्थिर किया है;[4] और १९३३ तक में बंगाल के प्रसिद्ध सिनेमा-निर्देशक देवकी बोसने अपनी फिल्म कृति

1. Kumbha married a daughter of the Rat or of Merta, the fitrst of the clans of Marwar. Mira Bai was the most celebrated princess of her time for beauty and romantic piety.
Annals and Aniiquities of Rajsthan.

2. Rao Jodha, the eldest son of Ranmal, born in 1415 succeeded in 1444 and died in 1488. He was a man of great vigour and capacity, and a very successful ruler..... ..His eldest son was Satal, who succeeded him, the sixth was Bika, the founder of Bikaner state and the fourth was D .da who established himself at Merta (whence the Mertiya sect of Rathor takes its name), gave his daushter Mira Bai in marriage to Rana Kumbha and was himself the grandfather of the heroic Jaimal etc. (Jodhpur Gazetteer)

३ मीराबाई का विवाह सं० १४७० के करीब राना मोकलदेव के पुत्र राना कुम्भकर्ण चित्तौर नरेश के साथ हुआ था। स० १४७५ में ऊदाराना के पुत्र ने रानी को मार डाला। [शिवसिंह सरोज पृ० ४७५]

४ 'माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर' के पृ० ३१-३५ में कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने मीरां को राणा कुम्भा की रानी बनाने के दो कारण दिये हैं। १ कवीर के नाम से प्रसिद्ध कुछ पदों में मीराँबाई का उल्लेख मिलता है। यथा :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



'राजरानी मीराँ' में मीराँ को राणा कुम्भा की रानी के रूप में ही चित्रित किया है।

इस भ्रांति का निराकरण सबसे पहले मुं० देवीप्रसाद[1] ने किया था जिन्होंने मारवाड़ और मेवाड़ में 'दरयाफ़्त' कर मीराँबाई का एक प्रामाणिक जीवन-चरित लिखा। इसमें कितनी ही नई बातों का उल्लेख किया गया है जो प्रियादास की टीका और टाड के राजस्थान में नहीं थी। फिर महाराणा सांगा नामक इतिहास ग्रंथ के रचयिता हर विलास सारदा ने भी टाड के मत का खंडन किया और मीराँबाई को महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की पत्नी

---

साधु भये सद्गति पाई, जाको पूरन कमाई। टेक
साधु की सङ्गत सन्त के वचन अवधड़ रही बताई॥
धना, सेन, रैदास नाम नीसरी मीराँ बाई।
कहत कबीरा सुन मेरे मनवा ज्योत में ज्योत मिलाई॥

और भी—नारायण सु लग रहो भाई।
गनका गीध अजामिल तारयो और तारयो मीराँबाई॥

कबीर की मृत्यु १५७१ सं० में हुई थी अतः मीराँ की मृत्यु इनसे पहले हो गई हो जाना चाहिये अतः मीराँ का समय कबीर के साथ ही पड़ता है। गुजरात में ऐसी प्रसिद्धि है कि मीराँ नरसी मेहता की समकालीन थीं। नरसी मेहता का जन्मकाल सं० १४७० के आसपास माना जाता है, अस्तु मीराँ का समय विक्रम की १५ वीं और १६ वीं शताब्दी ठहरता है। परन्तु उपर्युक्त दोनों पद कबीर की रचनाएँ नहीं हैं, उनके किसी भक्त की रचना जान पड़ती है। दूसरे मीरा नरसी की समकालीन नहीं थी उनसे लगभग सौ वर्ष पीछे हुई थीं।

१ सो यह बिलकुल गलत है क्योंकि राणा कुम्भा तो मीराँबाई के पति कुँवर भोजराज के परदादा थे और मीराँबाई के पैदा होने से २५ या ३० बरस पहिले मर चुके थे। मालूम नहीं कि यह भूल राजपूताने के ऐसे बड़े तवारीख लिखने वाले से क्यों कर हो गई है।.....मीराँबाई का नाम मेडतनी है और महाराणा कुंभा जी का इंतकाल सं० १५२५ में हुआ है उस वक्त तक मीराँबाई के दादा दूदा जी को मेड़ता मिला ही नहीं था इसलिये मीराँबाई राणा कुम्भा की राणी नहीं हो सकीं।"

[ मीराँबाई का जीवन चरित्र पृ० ३१-३२ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



निश्चित किया।[1] कर्नल टाड ने इतनी असंगत बात लिखी थी कि उसका निराकरण बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से मीराँ का समय निश्चित करना कुछ कठिन न था। परंतु जान पड़ता है कि लोगों ने इस ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया। फिर आगे चलकर मीराँबाई के नाम से प्रसिद्ध कुम्भस्वामी के मन्दिर में सं० १५०५ का एक प्रशस्ति[2] मिलती है जिसके अनुसार यह निश्चित हो जाता है कि यह मंदिर भी उन्हीं राणा कुम्भा का बनवाया हुआ है जिन्होंने कीर्तिस्तम्भ और आदि बाराह का मंदिर बनवाया था। जान पड़ता है कि मीराँबाई इसी मंदिर में पूजापाठ और भजन किया करती थीं, इसी कारण जनतामें वह मीराँबाई का मंदिर प्रसिद्ध होगया।

मीराँबाई के इतिहास की खोजकरनेवालों में महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। मीराँ के श्वसुरकुल और पितृकुल का विस्तृत और अत्यंत प्रामाणिक विवरण उन्होंने अपने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' और 'जोधपुर का इतिहास' में दिया है। 'उदयपुर राज्य का इतिहास' पृ० ३५८-५६ पर मीराँबाई के सम्बंध में वे लिखते हैं :

"कुंवर भोजराज और उसकी स्त्री मीराँबाई—राणासांगा का ज्येष्ठ कुंवर भोजराज था, जिसका विवाह मेड़ते के राव वीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीराँबाई के साथ सं० १५७३ (१५१६ ई०) में हुआ था। परंतु कुछ वर्षों

1. Col. Todd has stated THAT Miran Bai to be the queen of Kumbha. This is an error. Kumbha was killed in S. 1524 (A. D. 1467), while Miran's grandfather Duda, became Raja of Merta after that year. Miran's father Ratan Singh was killed in the battle of khanua, 59 years after Kumbha's death. Miran Bai was married to prince Bhojraj in S. 1573 (A.D. 1516) Miran bai was born at 1555 (A.D. 1494) and died in S. 1603 (A.D. 1546) at Dwarka (Kathiawar)at which place she had been residing for several years.
(Maharana Sanga page 95-96 Ajmer 1918)

२ कुम्भस्वामिन आलय व्यरचयच्छ्रीकुम्भकर्ण: ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



बाद महाराणा की जीवित दशा में ही भोजराज का देहांत हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्नसिंह युवराज हुआ।"

× × × × × ×

"मीराँबाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की जिसको दूदा ने निर्वाह के लिए १२ गाँव दे रक्खे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गाँव में विक्रमी सं० १५५५(१४९८ ई०)के आसपास होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहांत हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया और वहीं उसका लालन-पालन हुआ। विक्रमी सं० १५७२ (१५१५ ई०) में राव दूदा के देहांत होने पर वीरमदेव मेड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उसका विवाह महाराणा सांगा के कुंवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहांत हो गया। यह घटना किस संवत् में हुई यह निश्चत रूप से ज्ञात नहीं हुआ, तो भी सम्भव है कि यह विक्रमी स० १५७५ (१५ ८ ई०) और १५८० (१५२३ ई०) के बीच किसी समय हुई हो।"

माराँबाई के पितृकुल के सम्बध में आज तक जितनी खोज हो सकी है उसके अनुसार वे राव दूदा का वंशज ठहरती हैं। जोधपुर के संस्थापक राव जोधा जी की छः रानियों में पाँचवीं सोणगिरी रानी चम्पा के दो पुत्र बरसिंह और राव दूदा थे। राव दूदा बड़े ही पराक्रमी थे। छोटी अवस्था में ही उन्हों ने राठौरों के परम शत्रु मेवा संघल का बध किया था जिसका पराक्रम अजेय समझा जाता था। सं० १५१८ में अपने सहोदर बड़े भाई बरसिंह के साथ उन्होंने मेड़ता और उसके आस पास के सैकड़ों गाँव विजय कर अपने पिता के राज्य में मिलाया। सं० १५४५ में मरते समय राव जोधा ने मेड़ता की जागीर रानी चम्पा के दोनों पुत्र—बरसिंह और राव दूदा—को दिया फलतः सं० १५४५ में बरसिंह जोधावत ने मेड़ता राज्य की संस्थापना की। कहा जाता है कि बरसिंह और राव दूदा दोनों भाइयों में पटी नहीं और राव दूदा अपने सौतेले भाई बीका जी के पास बीकानेर चले गए। बरसिंह बड़े ही लड़ाके थे और आस-पास के मुसलमानी रियासतों में वे प्रायः लूट-मार किया

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



करते थे। सं० १५४८ में अजमेर के शासक मल्लू खाँ ने धोखे से बरसिंह को बंदी बना लिया। यह समाचार पाते ही राव दूदा अपने ज्येष्ठ पुत्र वीरम देव को मेड़ता का राज्य सँभालने के लिए छोड़कर जोधपुर के महाराज सातलदेव की सहायता से पीपाड़ के पास मल्लू खाँ को परास्त किया। बरसिंह कारामुक्त तो अवश्य हुए परन्तु कुछ ही दिनों बाद सं० १५४९ में उनकी मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि कारागृह में ही मुसलमानों ने उन्हें जहर दे दिया था। बरसिंह की मृत्यु के उपरांत मेड़ते का आधा राज्य राव दूदा को मिला और आधे भाग पर बरसिंह के पुत्र सीहाजी का अधिकार रहा। सीहा जी निर्बल शासक थे और उनमें अजमेर तथा नागौर के मुसलमान शासकों से युद्ध करने की सामर्थ्य न थी। अतएव सं० १५५२ में वे सम्पूर्ण मेड़ता अपने चाचा राव दूदा के लिए छोड़ स्वयं रीया चले गए।

राव दूदा के छः पुत्रों में राव वीरमदेव सबसे बड़े थे जिनके ग्यारह पुत्रों में सबसे बड़ा चित्तौर का रक्षक वीरश्रेष्ठ जयमल था। दूदाजी के चतुर्थ पुत्र राव रत्नसिंह थे जिन्हें गुजारे के लिए बारह गाँव मिले थे। इन्हीं बारह गाँवों में से एक कुड़की नामक गाँव में मीराँबाई का जन्म हुआ जो अपने पिता की इकलौती बेटी थीं। बचपन में ही मातृहीन हो जाने के कारण मीराँ अपने पितामह राव दूदा के साथ मेड़ता में ही रहने लगीं जहाँ उनसे छोटे चचेरे भाई जयमल भी रहते थे। राव दूदा चतुर्भुज भगवान् के भक्त एक परम वैष्णव थे। मेड़ते में उनका बनवाया हुआ चतुर्भुज जी का प्रसिद्ध मंदिर अब तक मौजूद है। सं० १५७२ में राव दूदा की मृत्यु के पश्चात् वीरमदेव मेड़ता के शासक हुये जिन्होंने सं० १५७३ में मीराँबाई का विवाह महाराणा सांगा के ज्येष्ठ कुँवर युवराज भोज के साथ कर दिया। सं० १५८४ में खनवाँ के युद्ध में महाराणा सांगा की पराजय हुई और उसी युद्ध में मीराँ के पिता रत्नसिंह भी वीरगति को प्राप्त हुए।

'भक्त नामावली' के सम्पादक राधाकृष्ण दास मेवाड़ में मीराँबाई के नाम से प्रसिद्ध मन्दिर को मूर्तिशून्य देख, उनके इष्टदेव गिरधर लाल की मूर्ति की खोज करते हुये आमेर पहुँचे और वहाँ उस मूर्ति को श्री जगत-



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



शिरोमणि जी के नाम से प्रतिष्ठित पाया। कहा जाता है कि जब राजा मान-सिंह ने चित्तौर विजय किया था तब इन्हें (श्री गिरधर लाल की मूर्ति को) साथ लाए थे और अपने पुत्र कुँवर जगतसिंह की अकाल मृत्यु पर 'जगत शिरोमणि' के नाम पर इनकी स्थापना की थी। ढूँढ़ते ढूँढ़ते श्री गरुड़ जी की संगमरमर की मूर्ति की चौकी पर एक लेख खुदा मिला—"सं० १६११ फागु सुदी सातां भाव संध का (?) सुत्रधार बोहीथ ईसर की से" और उन्हीं गरुड़ जी के चौखट पर बाहर की ओर एक दूसरा लेख भी मिला—"स० १७१६ मि० सावन सुदी ८..... दास से बेटा.....दुबे नैण"। इन लेखों के आधार पर सम्पादक ने यह अनुमान लगाया कि सं० १६११ में चित्तौड़ में मीराँबाई के इष्टदेव की मूर्ति स्थापित की गई और सं० १७१६ में वही मूर्ति आमेर में प्रतिष्ठित हुई। मुं० देवी प्रसाद को मीराँबाई के गिरधर लाल की मूर्ति मेड़ता में चतुर्भुज जी के मन्दिर[1] में मिली थी। इन दोनों मूर्तियों में मेड़ता की मूर्ति ही मीराँबाई की अपनी मूर्ति जान पड़ती है। सं० १६११ के गिरधरलाल की जो मूर्ति मीराँबाई के मन्दिर में चित्तौड़ में स्थापित हुई थी, यह सम्भवतः मीराँबाई की अपनी मूर्ति नहीं थी, वरन् उसी प्रकार की नव-निर्मित कोई दूसरी ही मूर्ति थी। सं० १६११ में मीराँ सम्भवतः मेवाड़ में नहीं द्वारका में थीं; और मेवाड़ में उस भक्ति और प्रेम की प्रतिमूर्ति मीराँ के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करने के लिए तत्कालीन महाराणा उदयसिंह ने मीराँबाई से पूजा-स्थल में, जहाँ कभी उनके गिरधर लाल की मूर्ति प्रतिष्ठित थी, एक नई मूर्ति की स्थापना की होगी। कहा भी है कि

कहँ गोरख कहँ भरथरी, कहँ गोपीचँद गौड़।
सिद्ध गयाँ ही पूजिया, सिद्ध रह्याँ की ठौड़॥

जनश्रुतियों में किसी राणा द्वारा मीराँ पर अत्याचार किए जाने की कथा

१ मीराँबाई मेड़ते में जिस महल में रात को गिरधर लाल जी की मूरति को शृङ्गार करके उसके आगे गाया बजाया और नाचा करती थी वह अब चतुर्भुज जी के मन्दिर में शामिल है और गिरधर लाल जी की वह मूरति भी इसी मन्दिर में मौजूद है।
[ मीराँबाई का जीवन चरित्र पृ० १७ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मिलती है। मीराँ के मेवाड़-निवास के संक्षिप्त काल में तीन राणा हुए—महाराणा सांगा (सं० १५८४ तक) राणा रत्नसिंह (सं० १५८४-८८) और राणा विक्रमादित्य (सं० १५८८-१५९२)। अब प्रश्न यह उठता है कि इन तीन राणाओं में किस-कितने कब-कब क्या-क्या अत्याचार किए? इतिहासकों का मत है कि राणा विक्रमादित्य ने ही मीराँ को सारे कष्ट दिए थे। महाराणा सांगा अपने विविध युद्धों में इतने व्यस्त रहा करते थे कि इन घरेलू तथा छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने का उन्हें समय भी न मिलता था। खनवाँ के युद्ध में पराजित होने के कुछ ही दिनों बाद सं० १५८४ में महाराणा का मृत्यु हो गई। राणा रत्नसिंह के समय में भी मीराँ पर अधिक अत्याचार नहीं हुए, सम्भव है कि लोक लज्जावश साधु-संतों की संगति में कुछ बाधा पहुँचाई गई हो। रत्नसिंह एक प्रजावत्सल और सुयोग्य शासक थे, परन्तु सं० १५८८ में बूँदी के राव सूरजमल से कुछ झगड़ा हो जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई और राणथम्भौर से लाकर राणा विक्रमादित्य मेवाड़ के राजसिंहासन पर बिठाए। विक्रमादित्य की अवस्था उस समय चौदह वर्ष की थी (जन्म सं० १५७४)। कहा जाता है कि राणा विक्रमादित्य ने मीराँ को बहुत कष्ट दिए। विक्रमादित्य के समय में सारे सामंत और सारी प्रजा उनसे असंतुष्ट थी। जान पड़ता है कि एक बालक और साथ ही निर्बल शासक पाकर उसके अमात्य बीजवर्गी ने राणा की ओट ले सभी सामंतों का अपमान किया होगा और उसी ने मीराँ पर भी अत्याचार किए होंगे। प्रसिद्ध भी है कि

बीजावर्गी बानियो, दूजो गूजर गौड़।
तीजो मिले जो दाहमो, करे टापरो चौड़॥

मीराँ पर जो जो अत्याचार किए गए वह एक चौदह-पंद्रह वर्ष के बच्चे की सूझ नहीं हो सकती, चाहे वह बच्चा राजदरबार में ही क्यों न पला हो। अस्तु, राणा की ओट लेकर बीजावर्गी ने ही मीराँ पर अत्याचार किए थे। मीराँ को जो विष दिया गया था, वह भी इसी बीजावर्गी की करामात थी। मुं० देवीप्रसाद ने लिखा है, "आखिर जब राणा जी ने देखा कि रोक-टोक से कुछ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



फायदा न हुआ तो अपने मुसाहब की सलाह से जो बीजावर्गी जात का महाजन था, मीराँबाई के मारने की तजवीज की, पहिले फूलों की डालियों में सांप-बिच्छू छुपा-छुपा कर भेजे और फिर एक प्याला जहर हलाहल का तैयार करके उसी महाजन को दिया कि भाभी जी को पिला आवे। "आगे फिर लिखा है कि " मीराँबाई ने उस मुसाहब को सराप दिया कि तेरे कुल में औलाद हो तो माया न हो और जो माया हो तो औलाद न हो। कहते हैं कि इस सराप का असर कुल कौम पर पड़ा। जोधपुर में जो बीजावर्गी बनिये हैं वे भी यही कहते हैं कि मीराँबाई के सराप से अब तक हमारी औलाद और आमदनी में तरक्की नहीं होती है। [1]मेवाड़ के बीजावर्गी तो तीन तेरा हो गए हैं और जब ही से राजों में इस कौम का ऐतबार जाता रहा है और कहीं किसी बीजावर्गी को राज का काम नहीं मिलता।"

अस्तु, साधारण लोगों में जो प्रसिद्ध है कि राणा ने मीराँ पर अत्याचार किए, वह सत्य नहीं है। वास्तव में महाजन जाति का बीजावर्गी ही इन सब अत्याचारों के मूल में था।

मीराँबाई के नाम के सम्बंध में कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह नाम मीराँ का वास्तविक नाम न था केवल संतों द्वारा दिया गया उपनाम मात्र था जो आगे चलकर इतना अधिक प्रचलित हो गया कि मीराँ का वास्तविक नाम एकदम विस्मृत हो गया। इस अनुमान का कारण 'मीराँबाई' नाम की असाधरणता है। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के मतानुसार 'मीराँ, शब्द का प्रयोग 'कबीर-ग्रंथावली' में तीन स्थानों पर और दादू की बानी में एक स्थान पर मिलता है, अन्यत्र कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। 'मीराँ' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए डा० बड़थ्वाल इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह शब्द फारसी का है, संस्कृत का नहीं। अस्तु, उनका यह अनुमान अनुचित नहीं है कि मीराँ की भक्ति भगवान् से प्रभावित होकर किसी संत— विशेषकर मुसलमान संत—ने उन्हें यह नाम दिया हो।

१ मीराँबाई का जीवन-चरित्र पृ० ११-१२।
२ वही पृ० १३।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मीराँ जैसी माधुर्य भाव की भक्ति करने वाली को मीराँबाई अर्थात् 'भगवान् की पत्नी' नाम दिया जाना असम्भव नहीं है, परन्तु जो बात सम्भव नहीं जान पड़ती वह यह है कि मीराँ ने इस नाम को अंगीकार किया और केवल अंगीकार ही नहीं किया वरन् अपने पदों में मीराँ नाम की छाप भी लगाई। फिर एक और भी प्रश्न खड़ा होता है कि मीराँ को यदि यह नाम किसी संत द्वारा दिया गया होगा तो पर्याप्त यश मिलने के पश्चात् ही दिया गया होगा, पहले नहीं; अतएव यह नाम मिलने से पहले मीराँ ने जो पद लिखे थे, जो रचनाएँ की थीं, उसमें किस नाम की छाप लगी थी और उन पदों का क्या हुआ ?

रही मीराँ नाम की असाधारणता—तो यह नाम साधारण है अथवा असाधारण इसका विचार इस दृष्टि से नहीं करना चाहिए कि भारतीय साहित्य में यह नाम और शब्द नहीं मिलता; भारतीय साहित्य में रैदास नानक और पीपा आदि शब्द और नाम ही कहाँ मिलते हैं ? यह नाम तो असाधारण तभी कहा जा सकता है जब उस समय अथवा उससे पहले के राजपूत समाज में इस प्रकार का न मिले। यदि यह कहा जाय कि मीराँ शब्द का मूल संस्कृत नहीं फारसी है, तो राजपूतों के नाम सभी संस्कृत मूल के ही होते थे ऐसा कोई नियम नहीं है। राजपूतों के सैकड़ों नाम असाधारण हैं और उन सब नामों का सम्बंध संस्कृत मूल से जोड़ना असम्भव-सा है। उदाहरण के लिए नैणसी की ख्यात से कुछ नाम देखिए—भूणाग सी, कान्हरण देव, बाप्पा रावल, खींवाँ, कीता, अद्ध, चूँडा, काधल, माँजा, कल्ला, शेखा, बल्लू, कम्मा, कचरा, डूँगर सिंह इत्यादि। राजपूतों में कितनी ही जातियाँ शक और सिथियन मूल की हैं और उनके नाम भी संस्कृत मूल के नहीं मिलते। रणथम्भौर के पराक्रमी राणा हमीर का नाम भी कहा जाता है कि फारसी 'अमीर' शब्द का रूपांतर है अस्तु, राजपूतों के नामों की असाधारणता देखते हुए 'मीराँ' नाम की असाधारणता बहुत कम हो जाती है।

उस समय के राजपूत-समाज में मीराँ नाम असाधारण तो नहीं जान पड़ता। राजपूत स्त्रियों का नाम इतिहास-ग्रंथों तथा ख्यातों में बहुत कम मिलता है, इससे कहना कठिन ही है कि मीराँ नाम साधारण था अथवा असा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



धारण; परंतु पुरुषों के नामों पर ध्यान देने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मीराँ नाम असाधारण नहीं था। नैणसी की ख्यात में 'मेरा' नाम लगभग आधे दर्जन व्यक्तियों का मिलता है। मंडोर के राणा मोकल को राणा खेता के पासबानिये खातण के पुत्र चाचा व मेरा ने मारा। नरसिंह के पुत्र सूरा के वंश में सूरा के तृतीय पुत्र कल्ला के पुत्र का नाम भी मेरा था। इसी प्रकार बावसूई के चौहानों में सीहा रूदा के पुत्र का नाम भी मेरा था। ऊपरकोट के सोढ़ों के वंश में धारावर्ष के पुत्र दुर्जनसाल की वंशावली में भी 'मेरा' नाम मिलता है। इस प्रकार राजपूतों में 'मेरा' नाम असाधारण न था। यदि बालक का नाम 'मेरा' रखा जा सकता है तो कन्याओं का मीरा, अथवा मीराँ नाम असाधारण नहीं कहा जा सकता।

अस्तु, मीराँबाई का यह नाम संतो द्वारा दिया गया उपनाम मात्र नहीं जान पड़ता, वरन् यह उनका प्रकृत नाम था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# तीसरा अध्याय

## मीराँबाई की जीवन-सम्बंधी तिथियाँ

मीराँ की जन्म-तिथि के सम्बध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। जो लोग मीराँ को राणा कुम्भा की रानी मानते थे अथवा भक्ति-भावना को पैतृक सम्पत्ति समझकर उन्हें प्रसिद्ध भक्त और योद्धा वीर जयमल मेड़तिया की कन्या मानते थे, उनके मतों तथा तिथियों पर विचार करना ही व्यर्थ है, क्योंकि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा आधुनिक खोज से यह निश्चित रूप से प्रमाणित हो चुका है कि मीराँ का जन्म सं० १५५५ और १५६० के बीच किसी समय हुआ था। पता नहीं मिश्रबंधुओं ने किस प्रकार यह भूल की कि उन्होंने अपने 'विनोद' में मीराँ की जन्म-तिथि सं० १५७३ स्थिर की और रामचंद्र शुक्ल ने भी न जाने कैसे इस तिथि का अनुमोदन किया। सं० १५७३ तो सर्वसम्मति से मीराँ के विवाह की तिथि है। जिन कुँवर भोजराज से मीराँ का विवाह होना कहा जाता है, उनकी मृत्यु सं० १५८० के आसपास अथवा कुछ पहले ही हो चुकी थी। अतः १५७३ वि० को मीराँ की जन्म-तिथि मानना ठीक नहीं है।

यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि मीराँबाई के प्रथम प्रामाणिक चरित्र-लेखक मुंशी देवी प्रसाद ने कर्नल टाड और कार्तिकप्रसाद खत्री के मत का खंडन करते हुए भी मीराँ की जन्म-तिथि का निश्चित उल्लेख नहीं किया। फिर भी यह बात निश्चित-सी है कि वे मीराँ की जन्म-तिथि सं० १५५० और १५५५ के बीच में मानते थे। कर्नल टाड की 'ग़लती' बताते हुए वे लिखते हैं कि राणा कुम्भा मीराँबाई के पैदा होने से २५ या ३० वर्ष पहिले मर चुके थे,[1] और राणा कुम्भा की मृत्यु-तिथि उन्होंने सं० १५२५ मानी

१ मीराँबाई का जीवन-चरित्र पृ० ३१।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



है, अतः मीराँ का जन्म सं० १५५०-५५ के बीच किसी समय हुआ होगा। राजस्थान के अन्य इतिहासकार हरविलास सारदा और गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने एक मत से मीराँ की जन्म-तिथि सं० १५५५ के आसपास निश्चित की है और डा० रामकुमार वर्मा तथा परशुराम चतुर्वेदी ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। परन्तु इस तिथि को स्वीकार करने में एक आपत्ति यह है कि विवाह के समय मीराँ की अवस्था १८ वर्ष की आती है जो देश-काल को देखते बहुत अधिक जान पड़ती है। मुसलमानों के अत्याचार के कारण ही मध्य युग में बाल-विवाह की प्रथा चल पड़ी थी और कहीं-कहीं तो अपनी लज्जा बचाने के लिए बालिका-वध की प्रथा भी प्रचलित हो गई थी। मीराँ के जन्म के कुछ ही दिनों पहले सं० १५४८ में गणगौर के मेले से १४० कुमारी राठौर-कन्याओं का हरण हुआ था जिनकी रक्षा के लिए जोधपुर के महाराव सातलदेव तथा मीराँबाई के पितामह रावदूदा ने मुसलमानों से घोर युद्ध किया था। सातल देव उसी युद्ध के घावों से स्वर्गगामी हुए थे, परंतु मरने के पहले उन्होंने सभी कुमारियों को मुक्त करा लिया था। ऐसे वातावरण में यह कैसे सम्भव था कि राव दूदा और वीरमदेव १८ वर्ष की अवस्था तक अपनी कन्या को कुमारी ही रखते। फिर सं० १५५५ में मीराँ का जन्म मानने पर उनके पति कुँवर भोजराज की जन्म-तिथि सं० १५५३ के आसपास अथवा कुछ पहले ही माननी होगी। इस प्रकार महाराणा सांगा, जिनका जन्म सं० १५३९ (१२ अप्रैल सन् १४८२ ई०) में हुआ था, १४ वर्ष की अवस्था में ही एक संतान के पिता बन जाते हैं जो सम्भावना से दूर जान पड़ता है। फिर जब पुरुष होकर भी महाराणा सांगा का विवाह १४ वर्ष से भी कम अवस्था में हो गया था, तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि बालिका होकर भी मीराँ १८ वर्ष तक अविवाहिता रहतीं। वे भी तो एक बड़े वंश की इकलौती बेटी थीं। अस्तु, सं० १५५५ के आसपास मीराँ का जन्म मानना संगत नहीं जान पड़ता।

कन्हैयालाल मुंशी[१] और वियोगी हरि ने मीराँ की जन्म-तिथि सं० १५५७ के आसपास मानी है, जिसके संबंध में भी वही आपत्ति खड़ी हो जाती है

१ Gujrat and its Literature 1935 A. D.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



परंतु कुछ कम मात्रा में। 'भक्तमाला' में मीराँ की विवाह के समय की अवस्था १२ वर्ष लिखी है और अनाथनाथ वसु ने ११ वर्ष स्थिर की है। सम्भवतः इसी के आधार पर मेकालिफ ने मीराँ की जन्म-तिथि १५६१ स्थिर की है जो सं० १५५५ अथवा १५५७ की अपेक्षा सम्भावना के अधिक निकट है। तनसुखराम मनसुखराम त्रिवेदी ने 'वृहत् काव्य दोहन' भाग ७ की भूमिका में मीराँ की जन्म-तिथि सं०१५५० और १५६० के बीच मानी है और कुँवर कृष्ण, विष्णुकुमारी 'मंजु' और डा० धीरेन्द्र वर्मा मीराँ का जन्म सं० १५६० में मानते हैं। सभी बातों पर सम्यक् विचार करने पर मीराँ की जन्म-तिथि सं० १५५६-६० के आसपास ठीक जान पड़ती है।

मीराँ के विवाह की तिथि सं० १५७२ निश्चित-सी है, केवल अनाथ-नाथ वसु सं० १५६७ में मीराँ का विवाह मानते हैं। उनके विधवा होने की तिथि अभी तक निश्चित नहीं हो सकी है। मुं० देवीप्रसाद कुँवर भोजराज की मृत्यु सं० १५७३ और १५८३ के बीच किसी समय मानते हैं और गौरीशंकर ओझा सं० १५७५ और १५८० के बीच किसी समय। मेवाड़ के ऐतिहासिक विभाग में इस सम्बंध में कोई सूचना नहीं मिलती। सम्भवतः यह दुर्घटना सं० १५८० के आसपास किसी समय हुई थी।

मीराँ के मेवाड़-त्याग की तिथि सं० १५६० के आसपास है। सं०१५६१ में चित्तौर में जो शाका हुआ था उसमें १३००० महिलाओं ने जौहर किया था। उस समय मीराँ चित्तौर में होतीं तो उन्हें भी जौहर अवश्य करना पड़ता, क्योंकि एक तो वे विधवा थीं, दूसरे राणा तथा अन्य कुटुम्बी उनकी मृत्यु चाहते भी थे। अतएव निश्चित रूप से मीराँ सं० १५६१ से पहले ही मेवाड़ छोड़ मेड़ता जा चुकी थीं, जहाँ उनके चाचा बीरमदेव और भाई जयमल उनका बहुत आदर करते थे। परंतु मेड़ता में भी मीराँ अधिक दिन न रह सकीं। सं० १५६५ में जोधपुर के राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया और वे भाग कर अजमेर चले गए। मीराँ को उस समय विवश होकर मेड़ता भी छोड़ना पड़ा और तब वे सम्भवतः वृंदावन की ओर तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़ीं। अस्तु, सं० १५६५-६६ में मीराँ वृंदावन आईं और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



वहाँ प्रख्यात भक्त तथा विद्वान् रूप गोस्वामी के दर्शन किए। वृंदावन से मीराँ द्वारका की ओर कब और क्यों गईं इसका कुछ भी पता नहीं है, परंतु इतना तो निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि सं० १६०३ से पहले ही वे द्वारका पहुँच गई थीं; क्योंकि प्रायः सभी इतिहासकारों ने सं० १६०३ में द्वारका में मीराँ की मृत्यु निश्चित किया है। सं० १६०३ में मीराँ की मृत्यु नहीं हुई जैसा कि आगे विचार किया जाएगा, परन्तु वे उस समय तक द्वारका अवश्य पहुँच गई होंगी। वृंदावन में वे काफी दिनों तक रही होंगी क्योंकि वृंदावन उन्हें बड़ा प्रिय था। वे स्वयं लिखती हैं:

आली म्हाँने लागे वृंदावन नीको ॥ टेक ॥
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंद जी को ॥
निरमल नीर बहत जमुना में, भोजन दूध दही को ॥
रतन सिंघासन आप बिराजे, मुकट धरयो तुलसी को ॥
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥

और 'भक्त नामावली' में भी लिखा मिलता है:—

ललिता हू लइ बोलि के, तासों हौ अति हेत।
आनँद सों निरखत फिरै, वृन्दावन रस खेत ॥

फिर उस 'रस खेत' वृंदावन को छोड़ वे द्वारका क्यों चली गईं, इसका कुछ कारण नहीं मिलता। प्रियादास ने अवश्य इस ओर संकेत किया है कि 'राना की मलीन मति देखि बसी द्वारावती', परन्तु राना की मलीन मति से मीराँ के वृंदावन-निवास में क्या बाधा पड़ सकती थी, यह बात समझ में नहीं आती। सम्भव है कि वृंदावन के समान द्वारका को भी गिरधर लाल का प्रिय स्थान जान कर मीराँ तीर्थ-यात्रा के विचार से गई होंगी और वहीं रम गई होंगी। कारण चाहे जो भी हो सं० १६०० के आसपास अथवा कुछ पीछे मीराँ वृंदावन से द्वारका चली गईं और मृत्यु-पर्यन्त वहीं रणछोड़ जी के मन्दिर में निवास करती रहीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मीराँ के निधन की तिथि मुं० देवीप्रसाद ने सं० १६०३ मानी है। वे लिखते हैं :

'राठोड़ों का एक भाट जिसका नाम भूरदान है, गाँव लूणवे, परगने मारोठ इलाके मारवाड़ में रहता है। उसकी जबानी सुना गया कि मीराँबाई का देहांत सं० १६०३ में हुआ था और कहां हुआ यह मालूम नहीं।'

[ मीराँबाई का जीवन-चरित्र पृ० २८ ]

इसी मौखिक साक्ष्य पर मीराँ की मृत्यु सं० १६०३ में निश्चित की गई और अन्य इतिहासकार हरिविलास सारदा, गौरीशंकर हीराचंद ओझा भी इसी तिथि को प्रमाण मानते हैं। दूसरी ओर वेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'मीराँबाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र' में इसका खंडन किया गया है और आधार रूप में दो जनश्रुतियों का सहारा लिया गया है। वे जनश्रुतियाँ सम्राट् अकबर का तानसेन के साथ मीराँबाई के दर्शनों के लिए आना और मीराँ तथा गोसाईं तुलसीदास के बीच पत्र-व्यवहार है। मीराँ का निधन सं० १६०३ में मानने पर ये दोनों जनश्रुतियाँ असत्य सिद्ध हो जाती है क्योंकि सं०१५६६ में जन्म ग्रहण करने वाला अकबर सं० १६०३ तक मीराँ के दर्शनों के लिए नहीं जा सकता था और सं० १५८६ में पैदा होने वाले चतुर्दश वर्षीय बालक तुलसीदास के साथ मीराँ का परमार्थी पत्र-व्यवहार असम्भव था। परंतु वे जनश्रुतियाँ उस ग्रंथ में प्रमाणिक और सत्य मानी गई हैं। अस्तु, उस ग्रंथ के लेखक मीराँ का निधन सं० १६२० और १६३० के बीच किसी समय मानते हैं जैसा कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र ने उदयपुर दरबार की सम्मति से निर्णय किया था। 'वृहत् काव्य दोहन' में भी इसी आधार पर हरिश्चंद्र की दी हुई तिथि मान ली गई है और डा० रामकुमार वर्मा भी इसी तिथि का अनुमोदन करते हैं।

परंतु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है सम्राट् अकबर का तानसेन के साथ मीराँ के दर्शनार्थ आना और मीराँ तथा तुलसीदास जी का परमार्थी पत्र-व्यवहार—इन दोनों ही जनश्रुतियों में सत्य की मात्रा लेश भर भी नहीं है; इसलिए इन जनश्रुतियों के सहारे मुं० देवीप्रसाद की तिथि का खंडन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



नहीं किया जा सकता। फिर भी सम्भवतः मीराँ की मृत्यु सं० १६०३ में नहीं हुई थी। 'व्यास-बाणी' तथा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में मीराँ-सम्बंधी अवतरणों पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मीराँ सं० १६२२ के बाद तक भी जीवित थी। सं० १६०३ तक मीराँ की अवस्था ४५ वर्ष की भी नहीं पहुँचती। गुजरात में मीराँ की प्रसिद्धि देखते हुए यह असम्भव जान पड़ता है कि वे इतनी कम अवस्था में मरी होंगी। वियोगी हरि सं०१६२५ के आसपास मीराँ का निधन मानते हैं, और कुँवर कृष्ण सं० १६३० के आसपास। मृत्युतिथि सं० १६३० मानने पर मीराँ की अवस्था भी ७० के आसपास पहुंच जाती है जो इस कीर्ति के लिए पर्याप्त है और किसी प्रकार अधिक भी नहीं कही जा सकती।

एक प्रश्न अब यह खड़ा होता है कि भूरदान भाट ने जो तिथि बताई थी उसमें उसका कोई स्वार्थ तो था नहीं, उसने भी यह बात किसी आधार पर कही होगी. यद्यपि उस आधार का निर्देश नहीं किया गया। बहुत सम्भव है कि इस तिथि का सम्बन्ध प्रियादास की टीका में वर्णित उस प्रसंग से है जिसके अनुसार मेवाड़ के राणा ने मीराँबाई को मेवाड़ लौटा लाने के लिए ब्राह्मणों का एक दल भेजा था। ब्राह्मण जब मीराँ को लौटा लाने में समर्थ नहीं हुए तब सम्भवतः उन्होंने अपनी मर्यादा बचाने के लिए उनके मूर्ति में अंतर्ध्यान होने की कथा गढ़ ली जो मेवाड़ और मारवाड़ में स्वीकार कर ली गई। अस्तु, राजस्थान में मीराँ के अंतर्ध्यान होने की तिथि सं० १६०३ प्रसिद्ध हो गई और सं० १६११ में बड़े धूमधाम से मीराँबाई के नाम से प्रसिद्ध मंदिर में उनके इष्टदेव श्री गिरधर लाल की मूर्ति की स्थापना हुई जैसा कि राधाकृष्ण दास की खोज से स्पष्ट है। इसी प्रकार मीराँ का सं० १६०३ से पहले ही द्वारका पहुँच जाना अधिक सम्भव जान पड़ता है। अस्तु, मीराँ की जीवन-सम्बन्धी आवश्यक तिथियाँ इस प्रकार है :

| | |
|---|---|
| जन्म-तिथि | सं० १५५६ ६० वि० |
| विवाह | सं० १५७३ वि० |
| वैधव्य | सं० १५८० वि० के आसपास |

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



| | |
|---|---|
| मेवाड़-निवास | सं० १५७३ से १५९० वि० तक |
| मेवाड़-त्याग | सं० १५९० वि० के आसपास |
| मेड़ता-निवास | सं० १५९० से १५९५ वि० तक |
| मेड़ता-त्याग | सं० १५९५ वि० |
| वृंदावन-यात्रा | सं० १५९५-९६ वि० |
| रूप गोस्वामी से भेंट | सं० १५९६-९८ वि० के बीच |
| द्वारका-गमन | सं० १६०० वि० के आसपास |
| मृत्यु | सं० १६३० वि के आसपास |

इसके अतिरिक्त मेवाड़ में गिरधर लाल की मूर्ति की स्थापना सं० १६११ वि०।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# चौथा अध्याय

## संस्कार और दीक्षा

मीराँबाई के पदों में उनकी अलौकिक भक्ति भावना, अपूर्व भावोद्रेक और गम्भीर रहस्योन्मुखा प्रतिभा का अद्भुत संयोग देखकर कुछ महानुभावों ने तो उनमें पर्व जन्म का कोई संस्कार पाया और कुछ न उस युग के कितने ही सिद्धि प्राप्त संतों और महात्माओं में से किसी एक अथवा अनेक को शिक्षा औ· दीक्षा का प्रभाव माना। जो लोग उनमें किसी पूर्व जन्म का संस्कार मानते थे, उन्होंने उस मधुर भाव की साकार भक्ति स्वरूपा को द्वापर युग के वृंदावन-विहारी भगवान् श्रीकृष्ण की सखी किसी व्रज-गोपी का अवतार माना और जो इसे शिक्षा और दीक्षा का प्रभ·व मानते थे उन्होंने क्रम से उन्हें संत रैदास, गोसाईं विट्ठलनाथ, चैतन्य देव और जीव गोस्वामी की शिष्या प्रमाणित किया।

अवतार की कल्पना कवित्वपूर्ण और सुंदर तो अवश्य है, परंतु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसका महत्व कम है। पर यदि अवतार की कल्पना केवल जन्म गत सस्कारों की पुष्टि के लिए ही हुई हो तो मैं इससे पूर्ण रूप से सहमत हूँ। मीराँ के जन्मगत संस्कार ही उनकी अपूर्व भक्ति-भावना और काव्य-प्रतिभा के अनुकूल थे। बिना संस्कार के केवल शिक्षा और दीक्षा के सहारे आज तक कोई इतना बड़ा भक्त और कवि नहीं हुआ। कबीर, रैदास, जीव गोस्वामी प्रभृति संतों और महात्माओं के कितने ही दीक्षित शिष्य रहे होंगे' परंतु मीराँ जैसा भक्त और कवि तो उनमें एक भी नहीं हुआ। अस्तु भारतीयों का कवित्वपूर्ण शैली में चाहे उन्हें व्रज-गोपी का अवतार माना जाय, चाहे पाश्चात्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनमें प्रतिभा ( genius ) और संस्कार ( Intui tion ) का विकास समझा जाय, दोनों एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



परन्तु प्रतिभा और संस्कार होने पर भी शिक्षा और दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है इसे किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु मीराँ को शिष्य रूप में प्राप्त करने का सौभाग्य किसे प्राप्त हुआ था, इसका अभी निश्चय नहीं हो सका है। कितने ही सम्प्रदायवाले इन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित प्रमाणित करने का प्रयत्न करते आरहे हैं और इस सम्बंध में अनेक जनश्रुतियाँ और पद भी प्रचलित हो गए हैं, परन्तु उनपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। रैदास सम्प्रदायवालों ने मीराँ के नाम से कितने ही पद लिख कर उन्हें रैदास की शिष्या प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। बाबा वेणी माधव दास ने मीराँ के पत्र द्वारा गोसाईं तुलसीदास से दीक्षा लेने की कथा गढ़ी है और वल्लभ सम्प्रदायवालों ने उन्हें गुसाईं विट्ठलनाथ से दीक्षित होना लिखा है। मेकालिफ ने इस आधार पर कि जिस समय मीराँ मारवाड़ और मेवाड़ में थीं, वहाँ रामानंदी साधुओं का बहुत अधिक जोर था, उनके रामानंदी सम्प्रदाय में दीक्षित होने की कल्पना की है और वियोगी हरि ने जीव गोस्वामी को मीराँ का दीक्षा गुरु प्रमाणित करते हुए लिखा है, "जीव गोस्वामी को इन्होंने (मीराँबाई ने) अपना गुरु बनाया। इनके कुछ पदों से यह भी जान पड़ता है कि यह भक्तवर रैदास की चेली थीं। सम्भव है रैदास जी की बानी का प्रभाव इन पर पड़ा हो और उनको भी इन्होंने गुरु मान लिया हो, परन्तु सिद्ध गुरु श्री चैतन्यदेव के कृपापात्र जीव गोस्वामी ही थे।' साथ ही अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने चैतन्यदेव की प्रशंसा में लिखा हुआ मीराँबाई का एक पद भी उद्धृत किया है जो 'राग कल्पद्रुम' प्रथम भाग पृ० ५५५ पर मिलता है। वह इस प्रकार है:

अब तौ हरि नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा नाम धरयो वैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कहँ छोड़ा सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किसोर भयो नव गोरा, चैतन्य जाको नाँव॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी मीराँ, रसना कृष्ण बसै॥

संत रैदास को गुरु प्रमाणित करने वाले पद संख्या में अधिक है और उनका प्रचार भी अधिक है, इसलिए अधिकांश विद्वान रैदास को मीराँ का गुरु मानते हैं। परन्तु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, स्थान और काल के विचार से रैदास और मीराँ का सम्पर्क सम्भव ही नहीं था, इसलिए मीराँ रैदास की शिष्या किसी प्रकार नहीं हो सकती थीं। अपने गुरु और सम्प्रदाय का महत्व बढ़ाने के लिए ही रैदास के शिष्यों ने ऐसे पद प्रचलित करा दिये थे। इसी प्रकार मीराँ का तुलसीदास जी से पत्र द्वारा दीक्षा लेने की कथा भी असत्य है और गढ़ी हुई जान पड़ती है। बल्लभ सम्प्रदाय में मीराँ का दीक्षित होना 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' से ही असत्य प्रमाणित हो जाता है, क्योंकि कृष्णदास अधिकारी जब मीराँ के 'गाम' पधारे थे उस समय मीराँ की भेंट लेना केवल इसीलिए अस्वीकार किया था कि वे बल्लभ सम्प्रदाय में श्रद्धा नहीं रखतीं। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में किसी 'जैमल की बेन' का गुसाईं विट्ठलनाथ की शिष्या होना लिखा है, परंतु यह बात पहले प्रमाणित की जा चुकी है कि वे मीराँ बाई के अतिरिक्त कोई अन्य 'बेन' रही होंगी।

मेकालिफ का मत केवल अनुमान मात्र है उसके पीछे कोई तर्क अथवा प्रमाण नहीं है, अतः उस पर विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है; परंतु वियोगी हरि का मत विचारणीय अवश्य है। उपासना और भक्ति भावना की दृष्टि से मीराँ का मत जीव गोस्वामी के मत से बहुत साम्य रखता है; स्थान और काल के विचार से भी मीराँ का जीव गोस्वामी की शिष्या होना सम्भव और संगत जान पड़ता है; केवल सुयोग्य लेखक ने जीव गोस्वामी की अवस्था का विचार नहीं किया। जीव गोस्वामी का जन्म सं० १५७० के आसपास अथवा कुछ बाद में ही हुआ था और इस प्रकार वे अवस्था में मीराँ से दश या बारह वर्ष छोटे थे। यह सत्य है कि गुणी और विद्वान का गुण ही देखा जाता है, अवस्था नहीं देखी जाती, परन्तु गुरु करते समय तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सभी बातों का विचार किया जाता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सम्भवतः रूप के स्थान पर जीव गोस्वामी का नाम प्रसिद्ध हो गया हो, परंतु स्वयं रूप गोस्वामी भी मीराँ के दीक्षा-गुरु नहीं हो सकते। जिस जनश्रुति के सहारे मीराँ और रूप अथवा जीव गोस्वामी का सम्पर्क प्रमाणित किया गया है, उस कथा में तो मीराँ ही रूप अथवा जीव को शिक्षा देती दिखाई गई हैं। गोस्वामी जी ने जब मीराँ से भेंट करने की प्रार्थना अस्वीकार की थी, उस समय मीराँ ने जो उत्तर दिया था, वह किसी प्रश्न का उत्तर न था, वरन् उनके अज्ञान और दम्भ का उत्तर था। वह उत्तर क्या था, स्वयं गोस्वामी जी को एक शिक्षा थी कि 'महाराज तुम संसार को माधुर्य भाव की भक्ति का उपदेश देते हो, परन्तु तुम्हें स्वयं पुरुष होने का इतना दम्भ है कि तुम स्त्रियों का मुख देखना पाप समझते हो। यही क्या तुम्हारा राधा-भाव है? यही क्या तुम्हारी मधुर भाव की भक्ति है?' यह करारा उत्तर पाकर गोस्वामी जी अपना सारा ज्ञान और वैराग्य भूल नंगे पाँव मीराँ के दर्शन के लिए बाहर निकल आये थे। इतना सब होने पर ये मीराँ को दीक्षा किस मुख से दे सकते थे। अस्तु मीराँ, रूप अथवा जीव गोस्वामी की भी शिष्या नहीं हो सकती थीं।

अपनी स्वतंत्र प्रकृति के कारण किसी सम्प्रदाय विशेष की शिष्या न होने पर भी मीराँबाई पर उस युग की विचार-धारा और भक्ति-उपासना-पद्धति का बहुत प्रभाव पड़ा। मीराँ के पदों में तीन प्रभाव तो स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। पहला प्रभाव संत कवियों और महात्माओं का था। जैसा कि मेकालिफ ने लिखा है मीराँ के समय में राजस्थान में रामानन्दी साधुओं का बड़ा प्रभाव था। अस्तु, रामानन्दी साधुओं का मीराँ पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा यह निश्चित-सा है। फिर मीराँ की पितामही सास झाली रानी रैदास की शिष्या थीं। अतः उनके पास रैदास के शिष्यों का निरंतर समागम रहता होगा और उन्हीं के सम्पर्क से मीराँ पर भी उनकी विचार-धारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। मेवाड़ और मेड़ता त्याग कर वृंदावन आने पर वहाँ की धार्मिक विचार-धारा से वे अवश्य प्रभावित हुई होंगी। वृंदावन उस



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



समय सारे भारतवर्ष में कृष्ण-भक्ति का सब से बड़ा केन्द्र था। एक ओर महाप्रभु वल्लभाचार्य का पुष्टि मार्ग गोपाल भक्ति का उपदेश दे रहा था, दूसरा ओर रूप, सनातन और जीव गोस्वामी माधुर्य भाव की भक्ति का प्रसार कर रहे थे; एक ओर मध्व सम्प्रदाय का जोर था, तो दूसरी ओर निम्बार्क-सम्प्रदाय का; कहीं राधा-वल्लभ के गीत गाये जा रहे थे तो कहीं टट्टी सम्प्रदाय का प्रभाव था। गली-गली में, मंदिरों में भागवत् की कथा चलती रहती थी;सूरदास, नंददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों के पदों से व्रज-मंडल गूंज रहा था। भक्ति-भावना और कवित्व के ऐसे विशुद्ध वातावरण में पहुँच कर मीराँ का संस्कार जाग पड़ा होगा और वे भी भक्ति-भावना में चूर होकर ऊँचे स्वर में गा उठी होंगी :

म्हाँने चाकर राखो जी, गिरधारी लाला चाकर राखो जी ॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, गोविन्द लीला गासूँ ॥

जान पड़ता है वृन्दावन के उस वातावरण में रहकर मीराँ के कंठ से विनय और लीला के पद फूट पड़े होंगे। उन पर भागवत का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा होगा। अंत में वृन्दावन से द्वारका पहुँच कर उनपर वहाँ के वातावरण का प्रभाव पड़ा होगा और नरसी मेहता के प्रभाव से राधा-कृष्ण सम्बन्धी शृंगार के पद रचे गए होंगे। मीराँ में संस्कार और प्रतिभा प्रधान थी केवल वातावरण-विशेष के प्रभाव से विशेष प्रकार का संस्कार प्रधान हो उठता था।

परन्तु संत-साहित्य, भागवत तथा संत महात्माओं से भी कहीं अधिक प्रभाव उनपर अपने जाति, कुल और धर्म का पड़ा। मीराँ एक प्रसिद्ध राठौर राजवंश की कन्या थीं और राजपूती वीरता के युग में पैदा हुई थीं। उस समय प्रत्येक राजपूत वीरता की प्रतिमूर्ति हुआ करता था और राजपूत कन्याओं में वीरता के साथ ही प्रेम का समुद्र भी लहराया करता था। एक ओर तो वे अपने वीर पतियों से कहती थीं :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



घोड़ा हींसे वारणे, वीर अखाड़े पोल ॥
कंकण बाँधो रण चढ़ो, वै बाग्या रण ढोल ॥[1]

और दूसरी ओर पति के रण-यात्रा करने पर प्रेम विह्वल हो वे अपनी अपनी सखियों से कहती थीं।

जो मैं होती बादली, आमै जाय अडंत ॥
पन्थ बहन्ता साजना, ऊहर छाँह कान्त ॥[2]

मीराँबाई उन्हीं राजपूत स्त्रियों में से एक थीं और उन्हीं के संग खेली-कूदी और पली थीं। परम्परा से उन्हें भी वीरता और प्रेम की शिक्षा मिली थी। दैवयोग से उन्हें बचपन में ही गिरधारी लाल जैसा पति मिल गया। फिर क्या था, उसी राजपूती हटधर्मी के साथ उन्होंने अपना प्रेम निबाहा। पद्मिनी के समान ही मीराँ का पातव्रत अटल था, अंतर केवल इतना ही था कि पद्मिनी चित्तौर के महाराणा रत्नसिंह की रानी थीं और मीराँबाई मोर-मुकुट पीताम्बर धारण करनेवाले नटनागर श्याम के रंग में रँगी थीं।

---

१ बाहर घोड़े हिनहिना रहे है, और वीरगण ड्योढी में उपस्थित हैं। अब लो, यह कंकण बाँधो और युद्ध के लिए प्रस्तुत हो, सुनो वह रण का बाजा बजने लगा।

२ यदि मैं कहीं बदली होती तो उड़ कर ऊपर चली जाती और मार्ग में आते हुए पति के ऊपर छाया किए चलती।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# पाँचवाँ अध्याय

## जीवन-वृत्त

मीराँबाई की जीवन-गंगा तीन धाराओं में प्रवाहित हुई है। प्रथम प्रारम्भिक धारा उनके जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा और वैवाहिक जीवन से सम्बंध रखती है; दूसरी धारा में वे एक भक्त के रूप में प्रकट होती हैं जब कि अन्य ईश्वर-परायण भक्तों की भाँति समाज और वातावरण के संघर्ष में आकर अपने धर्म-हठ, भक्ति-भावना और तेजस्विता का परिचय देती हुई आगे बढ़ती हैं, और अंतिम धारा में माधुर्य भाव की भक्ति-भावना के चरम विकास पर पहुँच कर वे ब्रज-गोपी के अवतारी रूप में प्रतिष्ठित होती हैं और अपनी पावन स्वर-लहरी से संसार का शोक-ताप हरती हुई अनंत में विलीन हो जाती हैं। वास्तव में मीराँ की जीवन-धारा भक्ति-भावना का क्रमिक विकास है।

### १

मेड़ता के वीर शासक रण-बाँकुरे राठौर राव दूदा ने अपने चतुर्थ पुत्र राव रत्नसिंह को निर्वाह के लिए बारह गाँव दिए थे उन्हीं में से एक गाँव कुड़की में सं० १५५६-६० ई० के आसपास एक कन्या-रत्न का जन्म हुआ जो संसार में मीराँबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। चंद्रकला के समान अपने घर को उजाला करता हुई वह बालिका बढ़ने लगी। बचपन में ही उसकी माता उसे छोड़ स्वर्ग सिधारीं। पिता राव रत्नसिंह एक वीर सैनिक थे, युद्ध करना ही उनका व्यवसाय था। अतः मीराँ अपने पितामह राव दूदा के यहाँ मेड़ता में आकर रहने लगी। दूदा जी केवल तलवार के ही धनी नहीं थे, चतुर्भुज भगवान् के भक्त एक परम वैष्णव भी थे। उन्हीं की छत्रछाया में रहकर मीराँबाई और उनके वीर बंधु, राव वीरमदेव के ज्येष्ठ पुत्र, वीर जयमल ने भक्ति और धर्म की शिक्षा पाई थी। बचपन से ही ये बालिका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



और बालक राधा-माधव के विवाह का खेल खेला करते थे और उसी खेल ही खेल में न जाने कब मीराँ ने अपने गिरधर लाल को वरण कर लिया था।

मृत्यु-व्यवसायी उन वीर राजपूतों के यहाँ शिक्षा-दीक्षा का कोई विशेष प्रबंध न था। बालक तलवारों के खेल ही खेल में मरना और मारना सीख लेते थे; बालिकाएँ गुड़ियों के खेल में ही प्रेम और वीरता की शिक्षा पा लेती थीं। गोरा और बादल, बाप्पा रावल और हम्मीर, पद्मिनी और कर्म देवी इत्यादि की वीर कहानियाँ राजस्थान के श्वास-प्रश्वास में प्रवाहित होती थीं। प्रचलित लोकगीत और रमते योगियों के उपदेश ही उस युग की पाठशालाएँ थीं। मीराँबाई भी उसी जलवायु में पली थीं और उसी पाठशाला से उन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी।

सं० १५७२ में राव दूदा की मृत्यु हुई और उनके ज्येष्ठ पुत्र राव बीरमदेव मेड़ता के शासक हुए। दूसरे ही वर्ष सं० १५७३ में बीरमदेव ने मेवाड़ के पराक्रमी महाराणा सांगा के ज्येष्ठ कुँवर भोजराज के साथ मीराँ का विवाह कर दिया। मीराँ ने अपने पारलौकिक जीवन और प्रेम का आधार तो पहले ही पा लिया था, अब उन्हें अपने लौकिक जीवन और प्रेम के लिए भी एक आधार मिल गया। परंतु उनका वैवाहिक जीवन बहुत ही संक्षिप्त रहा। विवाह के कुछ ही दिनों पश्चात् सं० १५८० के आसपास ही कुँवर भोजराज की मृत्यु हो गई। केवल बीस वर्ष की छोटी अवस्था में ही मीराँ विधवा हो गईं और उनके जीवन का वह लौकिक आधार छिन गया। अस्तु, उनके जीवन में लौकिक और पारलौकिक प्रेम के सामंजस्य की जो सम्भावना थी वह एकदम मिट गई। अब मीराँ का असीम स्नेह, अनंत प्रेम और अद्भुत प्रतिभा एक साथ ही गिरधारी लाल की ओर उमड़ पड़ी।

## २

लौकिक प्रेम की इतिश्री होने पर मीराँ ने पारलौकिक प्रेम की ओर ध्यान दिया और वे भगवान् कृष्ण की भक्त बन गईं। भक्त जीवन की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें ऊँच-नीच और स्त्री-पुरुष की भेद-भावना का लोप हो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जाता है। ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट करने का सब को समान अधिकार है, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा शूद्र, ईश्वर तो सब का समान रूप से है। इसी भावना से प्रेरित होकर स्वामी रामानंद ने भक्तों में जाति-पाँति की भावना ही मिटा दी थी। दूसरी ओर सनातन हिंदू धर्म और समाज में ऊँच-नीच और स्त्री-पुरुष में भेद की भावना प्रबल रूप से विद्यमान थी। अद्विजों को शिक्षा का अधिकार न था, स्त्रियों को परदे के भीतर रहने की आज्ञा थी, पुरुष-समाज में निकलने का उन्हें अधिकार भी न था। इतना ही नहीं एक वर्ग अछूतों का हुआ करता था जिसके स्पर्श मात्र से द्विज वर्ग अपवित्र हो जाया करता था। गाँव-गाँव, नगर-नगर में जाति-बहिष्कृत व्यक्तियों का जीवन भार-स्वरूप हो रहा था। अस्तु इन विरोधी भावनाओं और विचार-धाराओं में संघर्ष की भावना बहुत अधिक थी और यह संघर्ष प्रत्यक्ष सामने आया। प्रत्येक संत और भक्त के सम्बंध में इस संघर्ष की अनेक कथाएँ कही जाती हैं। एक भक्त चाहे वह कितना ही प्रतिभासम्पन्न और सिद्धि-प्राप्त क्यों न हो, प्रबल हिन्दू धर्म और समाज के विरुद्ध एक बहुत ही निर्बल और तुच्छ प्राणी था, इसीलिए हिन्दू समाज के कितने अत्याचार उसे सहने पड़ते थे। संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुलसीदास और नरसी मेहता इत्यादि सभी भक्तों को इस विरोध और संघर्ष में कष्ट उठाना पड़ा था, परन्तु इन विरोधों से उनकी भक्ति-भावना निरंतर बढ़ती ही गई, कभी पराजित होकर कम नहीं हुई।

समाज और वातावरण के विरुद्ध जितना प्रबल विरोध मीराँबाई को सहना पड़ा था उतना शायद ही किसी भक्त के बाँट में पड़ा हो। बात यह थी कि मीराँ स्त्री थीं और साधारण स्त्री नहीं, चित्तौड़ राजवंश की कुलबधू थीं, तिसपर भी अकाल में विधवा हो गई थीं। इसीलिए उनके ऊपर बंधन भी विशेष था। परम्परा से स्त्रियाँ परदे में रहती आई थीं, पुरुषों की दासी बनकर उनकी सभी अनुचित-उचित आज्ञाओं का पालन करना उनका कर्तव्य हुआ करता था; उनकी कोई स्वतंत्र सत्ता न थी। फिर विधवाओं के ऊपर हिन्दू समाज का शासन और भी कठोर था। परन्तु मीराँ उन स्त्रियों में न थीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



उनकी अपनी एक स्वतंत्र सत्ता थी, वे अपने प्रियतम गिरधर नागर की दासी मीराँ थीं, उनको नाच-गा कर रिझाना ही उनका धर्म था, साधु-संतों से भगवद्-वार्ता करना उनका प्रिय विषय था। अतएव उन्हें पुरुष-समाज का विरोध सहना पड़ा। वह पुरुष-समाज भी कोई साधारण न था, मेवाड़ की सारी राजशक्ति उसके पीछे थी। परन्तु बाबर और हुमायूँ जैसे मुगल सम्राटों का हृदय दहला देनेवाली वह राजशक्ति एक अबला भक्त मीराँबाई के धर्म और विश्वास को हिला न सकी। बालक राणा की ओट लेकर मेवाड़ के अमात्य वीजावर्गी ने उस अबला भक्त पर क्या-क्या अत्याचार न किए, परन्तु मीराँ भी तो एक राजपूत कन्या थीं। आग की लपटों को सहर्ष आलिङ्गन करनेवाली बालाओं में मीराँ अग्रगण्य थीं। अस्तु, सभी प्रकार के कष्टों को सहन करती हुई, विष का प्याला पीकर अमर हुई उस भक्त ने अपनी भक्ति-भावना को अक्षुण्ण रक्खा।

सं० १५६० के आसपास मीराँबाई ने अपने चाचा बीरमदेव का निमंत्रण पाकर मेवाड़ का त्याग किया। परन्तु वह त्याग पराजित व्यक्ति का त्याग न था, वह एक विजयी का त्याग था जैसे भगवान् कृष्ण ने मथुरा का त्याग किया था। उस त्याग ने मेवाड़ को मुक्ति दी। अब मेड़ता में मीराँ के गिरधर नागर की प्रतिष्ठा हुई। परन्तु अब मीराँ के भक्त जीवन की अग्नि-परीक्षा अथवा विष-परीक्षा हो चुकी थी, उन्हें स्वच्छंद भाव से भक्ति साधना का वरदान मिल चुका था। राव बीरमदेव और बीर जयमल दोनों ही मीराँ का आदर करते थे। यह क्रम चार-पाँच वर्षों तक चलता रहा। सं० १५६५ में जब राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीराँ के लिए एक आश्रय की आवश्यकता हुई। स्त्रियों के लिए पितृगृह और पतिगृह यही दो आश्रय-स्थान हुआ करते हैं। पितृगृह में आश्रय का अभाव पाकर मीराँ अपने पतिगृह को चलीं। लौकिक पति और पतिगृह से तो उनका सम्बंध टूट ही चुका था, अतः वे अपने पारिलौकिक पति गिरधर नागर के प्रिय क्रीड़ा-क्षेत्र वृंदावन की ओर चलीं।

जिस समय मीराँबाई वृंदावन में पहुँचीं, उस समय उनके गिरधर नागर को वृंदावन छोड़े सहस्रों वर्ष बीत चुके थे। तब से उस समय तक न जाने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



कितने विदेशी आक्रमणों ने उस पुण्य-भूमि को रक्तरंजित बनाया था, न जाने कितने परिवर्तन आए और चले गए, कितनी आँधियाँ आईं और चली गईं; फिर भी उस वृंदावन के कुंज-कुंज में, गली-गली में उस नटनागर की स्मृति विद्यमान थी। मंदिर-मंदिर में भगवान् की कथा का पाठ होता था। कवि और गायकों के कंठ से उन्हीं लीलामय की लीला स्वर और तानों में फूट-फूटकर निकल रही थी। कोई नंद-यशोदा के वात्सल्य प्रेम पर मुग्ध था, तो कोई गोपियों के अनन्य प्रेम का स्वांग रच रहा था। प्रेम और लीला के ऐसे विशुद्ध वातावरण में अपने गिरधर नागर को खोजती हुई मीराँ भी वहाँ आ पहुँचीं।

मेवाड़ के कारावास तुल्य जीवन में रहते हुए मीराँबाई ने जिस स्वच्छंद भक्त-जीवन की कामना और कल्पना की होगी, उसका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वृंदावन को उन्होंने स्वर्ग से भी बढ़कर माना होगा। साधु-समागम का स्वच्छंद आनंद, भगवद्वार्ता श्रवण करने का परम सुख, वृंदावन की कुंज-गलियों में अपने गिरधर नागर की लीलाओं का गुणानुवाद करते हुए नाचने-गाने का स्वच्छंद अवसर पाकर उस भक्त-शिरोमणि के हर्ष का ठिकाना न रहा होगा। उस स्वच्छंद वातावरण में रहकर एक अभिनव मीराँबाई का जन्म हुआ। वृंदावन के उस पुण्य निवास ने भक्त मीराँ की काया पलट कर दी, उनकी विचार-धारा और भक्ति-भावना में एक अद्भुत परिवर्तन आ गया। निर्गुण-पंथी संतों के समागम से मीराँ ने संसार की नश्वरता और ईश्वर-भक्ति की आवश्यकता की ओर ही ध्यान दिया था और अपनी कवित्वपूर्ण प्रतिभा के आवेश में विरह के उत्कृष्ट पदों की रचना भी की थी परन्तु वृंदावन में आकर उन्होंने चैतन्यदेव की शिष्य-मंडली—रूप, सनातन और जीव गोस्वामी से आध्यात्मिक प्रेम का सिद्धांत पाया और सूर तथा अष्टछाप कवियों से विनय और लीला के पदों का आदर्श लिया। उनके नारी जीवन का जो उल्लास अब तक उनके अंतस्तल में सुषुप्ति अवस्था में मूर्च्छित पड़ा था, वह अचानक एक ठोकर पाकर जाग उठा और अपने स्वच्छंद उल्लास में अचानक ही मीराँ गा उठीं :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मैं तो साँवरे के रँग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघुरू लोक-लाज तजि नाची॥

३

वृंदावन के निवास ने एक नूतन मीराँबाई को जन्म दिया जिसे हम मीराँ का अवतारी रूप कह सकते हैं। अवतार शब्द का प्रयोग वहाँ पौराणिक अर्थ में नहीं वरन् साहित्यिक अर्थ में है। द्वापर युग की व्रज-गोपियों के अनन्य प्रेम-भक्ति के उच्च आदर्श का पूर्ण निर्वाह करने के कारण मीराँ को उनका अवतारी रूप माना गया है। इस अवतारी रूप का प्रथम दर्शन सम्भवतः उस समय होता है जब मीराँ ने माधुर्य भाव की भक्ति का उपदेश करनेवाले वृंदावन के प्रसिद्ध गोस्वामी के सामने इस बात की घोषणा की थी कि व्रज-मंडल में उनके गिरधर नागर के अतिरिक्त और कोई पुरुष ही नहीं है। यह घोषणा कोई मौखिक कथन मात्र न था, मीराँ ने इस सत्य को अपने जीवन में साक्षात् प्रत्यक्ष कर दिखाया था। इसीलिए तो वृन्दावन के विद्वान् गोस्वामियों के रहते हुए भी देवीत्व का अभिषेक मीराँबाई ही पर किया गया।

सं० १६०० के आसपास मीराँबाई ने वृन्दावन से द्वारका का प्रस्थान किया। द्वापर युग की गोपियों से भी जो न हो सका था उसे कलियुग की गोपी ने कर दिखाया। वहाँ रणछोर जी के मंदिर में भगवान् की मूर्ति के सामने नाचना और गाना ही मीराँ की दिनचर्या थी। मीराँ की भक्ति-भावना और कीर्ति एक धर्म-कथा के रूप में चारों ओर फैल गई। आसपास के गावों से झुंड के झुंड लोग इस देवी के दर्शनों के लिए आने लगे थे। दूर-दूर से वैष्णव साधु इस अवतारी मीराँ को देखने आते थे। गोस्वामी हित हरिवंश, हरिराम व्यास जैसे प्रसिद्ध वैष्णव मीराँ के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करते थे।

सं० १६३० के आसपास एक दिन मीराँ के इस अलौकिक अस्तित्व का लोप हो गया, परंतु नश्वर शरीर के अंतर्ध्यान होने के पहले ही वे अमर हो चुकी थीं; इसीलिए उनके मानव-जीवन के अंत को मृत्यु की संज्ञा न देकर अपने प्रियतम में विलीन होना कहा गया है। मीराँ का अंत भी उनके जीवन के अनुरूप रहा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# उपसंहार

भारतीय साहित्य में प्रेम और त्याग की मूर्ति नारी के दो उच्चतम आदर्श मिलते हैं—एक हैं जनककुमारी सीता और दूसरी बरसाने की वृषभान-दुलारी राधा। सीता का पति-प्रेम बहुत ही ऊँचा है, इतना ऊँचा कि देव-भक्ति और ईश-भक्ति भी उसमें छिप जाते हैं। दूसरी ओर राधा का कृष्ण-प्रेम भी इतना ऊँचा है कि उसके सामने लौकिक पति-प्रेम की कोई सत्ता ही नहीं रह जाती। एक ने कर्म की कसौटी पर पति-प्रेम को कसा, दूसरे ने हृदय की सात्विक भावनाओं को संसार से समेट कर भगवान् की ओर मोड़ा; एक ने प्रेम का आदर्श उपस्थित किया और दूसरे ने प्रेम-भक्ति का। मीराँबाई ने अपने जीवन में राधा के उच्च आदर्श की अभिव्यक्ति की। राधा ने अपना प्रेम और विरह उस वृन्दावन में प्रदर्शित किया था, जहाँ मधुवन में 'ललित-लवंग-लता-परिशीलन कोमल मलय समीर' बहता रहता था; जहाँ मधुकर निकर करम्बित' कुंज-कुटीर में कोयल कूकती थी, जहाँ कलकल-नादिनी कालिन्दी की श्याम धारा श्रीकृष्ण का स्मरण कराती थी, जहाँ भगवान कृष्ण के सखा गोप और गोपी रास रचा करते थे। परंतु मीराँ ने अपना प्रेम और विरह मेड़ता और मेवाड़ के राजभवन में प्रकट किया था, जहाँ ईर्ष्या और द्वेषका साम्राज्य था, मानापमान और लोक-निन्दा का भय था, जहाँ विष की भीषण ज्वालामें प्रेम और भक्ति की परीक्षा देनी पड़ती थी। फिर भी अपनी उत्कट प्रेम भक्ति से मीराँ ने उस मरुभूमि को भी मधुमय बना दिया। इसीलिए तो मीराँबाई को राधा का अवतार माना गया है।

भगवद्भक्तों में मीराँ अग्रगण्य हैं। इतनी उच्च कोटि की भक्ति पौराणिक युग में सम्भवतः रही हो, ऐतिहासिक युग में इस भक्ति की कोई उपमा ही नहीं। निर्गुण पंथ के विद्वान् कवि सुंदरदास ने भक्ति की तीन श्रेणियाँ उत्तम, मध्य और कनिष्ठ निश्चित की है। इनमें उत्तम श्रेणी की पराभक्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



से युक्त कोई भक्त दृष्टिगोचर नहीं होता। पुराणों में भी नारद ही एक ऐसे भक्त हैं। मध्य श्रेणी की प्रेम-लक्षणा भक्ति ही मीराँबाई की भक्ति है जिसका लक्षण कवि ने इस प्रकार लिखा है :

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित नैकु रही न शरीर सँभारा॥
स्वास उस्वास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा॥
सुन्दर कौन करै नवधा विधि छाकि परयौ रस पी मतवारा॥
न लाज कानि लोक की, न देव कौ कह्यो करै।
न शंक भूत प्रेत की न देव यक्ष तैं डरै॥
सुनै न कान और की, दृशै न और अक्षणा।
कहै न मुक्ख और बात, भक्ति प्रेम लक्षणा॥

[ 'सुन्दर-सार'से उद्धृत ]

मीराँ के जीवन पर विचार करने तथा उनके मधुर पदों का मनन करने पर जिस व्यक्ति की कल्पना की जा सकती है, वह प्रेम-लक्षणा के इस लक्षण से पूर्ण साम्य रखता है।

प्रेम के रस में मतवाली मीराँ को इतना अवकाश ही न था कि वे कोई सम्प्रदाय स्थापित करतीं, अथवा शिष्य-मंडली बनाकर साधना और भक्ति का उपदेश करतीं। उनका सम्पूर्ण जीवन ही भक्ति का जीवन था, वे स्वयं भक्ति की साकार मूर्ति थीं, इसीलिए बिना किसी वंश अथवा शिष्य-परम्परा के आज भी लोग उस देवी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करते हैं और पश्चिमी भारत में आज भी एक समुदाय इस देवी को आराध्य मानकर अपने को मीराँबाई के पथ का पथिक मानता है।[२]

---

एक आँख। 2. A small sect called 'Mirabais' acknowledging the leadership of the Rajput princess, is saib to be still in existence in Western India,

'The mystics' Ascentics and Saints of India by John Camp bell Oman (London J9o3) पृ० ३५, ९ से ११ लापन तक।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सदाचार और नैतिक आदर्शों की उच्चतम सीढ़ी पर पहुँचे बिना उच्चतम कोटि की भक्ति प्राप्त ही नहीं हो सकती। मीराँ ने दोनों ही प्राप्त कर लिया था। उनका आचरण और चरित्र ठीक उसी प्रकार आदर्श और अद्वितीय था जिस प्रकार उनकी भक्ति। नाभादास, व्यास और ध्रुवदास ने मीराँ की भक्ति-भावना की प्रशंसा के साथ ही साथ उनके चरित्र की पवित्रता और निर्मलता का भी उल्लेख किया है। मीराँ केवल भक्त ही न थीं वे कवि थीं, गायिका थीं, और सबसे बढ़कर एक शुद्ध, सरल और पवित्र हृदया मानवी थीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# आलोचना खंड

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# प्रथम अध्याय

## मीराँबाई की रचनाएँ

मुंशी देवीप्रसाद ने राजस्थान में जो हिन्दी पुस्तकों की खोज की उसमें मीराँ की रचनाओं से सम्बंध रखने वाली चार पुस्तकों का पता लगा था जो निम्नलिखित हैं :

१. गीतगोविन्द की टीका—श्री जयदेव के प्रसिद्ध काव्य गीतगोविन्द की भाषा टीका।

२. नरसी जी का माहरा—गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता के भात भरने की कथा जो पूर्णतः पदों में लिखा गया है। विषय का वर्णन मीराँ की किसी मिथुला नाम की सखी को सम्बोधित करके किया गया है।

३. राग सोरठ पद-संग्रह—मीराँबाई, कबीर और नामदेव के पदों का संग्रह।

४. फुटकर पद—मीराँबाई आदि दस भक्तों के पदों का संग्रह।

इनके अतिरिक्त मीराँबाई के कुछ और पदों का भी उल्लेख मिलता है। रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'राग गोविन्द' नामक एक और ग्रंथ का उल्लेख किया है। गौरीशंकर हीराचंद ओझा भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मीराँ ने इस नाम का कविता का एक ग्रंथ लिखा था। इसके अस्तित्व के सम्बंध में अभी तक संदेह बना है। गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने यह भी लिखा है कि 'मीराँबाई का मलार' नामक राग अब तक प्रचलित है और बहुत प्रसिद्ध है। सम्भवतः इस राग की कुछ विशिष्ट रचनाएँ मीराँ ने की होंगी। इनके अतिरिक्त भी कृष्णलाल मोहनलाल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



झवेरी ने गुजरात में प्रचलित गर्वा गीतों में कितने ही गीतों को मीराँ की रचना स्वीकार की है।

मीराँ रचित 'गीतगोविन्द की टीका' अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है, अतएव कुछ विद्वानों की धारणा है कि सम्भवतः महाराणा कुम्भा रचित प्रसिद्ध 'रसिक-प्रिया टीका'को ही मीराँ रचित मान लिया गया हो। ऐसा भी हो सकता है कि मेवाड़ आने पर महाराणा कुम्भा की प्रसिद्ध टीका का परिचय पाकर मीराँबाई की कवि-प्रतिभा जग उठी हो और उन्होंने भी अपनी अलग टीका लिख डाली हो। परंतु मीराँ की उपलब्ध रचनाओंपर 'गीतगोविन्द'का प्रभाव इतना कम है कि सहसा यह विश्वास ही नहीं होता कि मीराँ ने कभी 'गीत-गोविन्द, की टीका लिखी होगी, क्योंकि जयदेव की वह अमर कृति इतनी सरस और मधुर है कि एक बार उसके प्रभाव में आजाने पर फिर उससे मुक्त नहीं हुआ जा सकता।

'नरसी जी का माहरा' अथवा 'नरसी जी रो माहेरो' नामक ग्रंथ के कुछ अंश उपलब्ध अवश्य हैं परन्तु उसे मीराँ की रचना मानने में संकोच होता है। सच तो यह है कि मीराँबाई अपने गिरधर नागर में ही इतनी निमग्न थीं कि किसी अन्य विषय पर ग्रंथ-रचना करने का न तो उन्हें उत्साह रहा होगा न अवकाश ही। सम्भव है कि यह मीराँ की बहुत प्रारम्भिक रचना हो जबकि वे अपनी सखी सहेलियों में खेलती रहती थीं और उसी समय कभी अपनी किसी मिथुला सखा को सम्बोधन करके गुजरात के प्रसिद्ध कवि और भक्त नरसी मेहता की प्रशंसा में यह छोटा-सा ग्रंथ रच डाला हो। बोलचाल की राजस्थानी भाषा में इसी विषय पर किसी लकड़हारे की एक प्रसिद्ध रचना कही जाती है। सम्भव है उसी के आधार पर मीराँ ने अपनी बाल प्रतिभा के आवेश में इसकी रचना कर डाली हो। परन्तु साहित्यिक दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्व नहीं है।

साहित्यिक दृष्टि से जिन रचनाओं का अधिक महत्व है वे हैं मीराँ के फुटकर पद। इन फुटकर पदों का संग्रह सम्भवतः जनता में प्रचलित गीतों के आधार पर किया गया है। बंगाल के श्री कृष्णानंद देव व्यास के 'राग कल्प-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



द्रुम' में सबसे पहले मीराँ के पदों का संग्रह मिलता है जो संख्या में लगभग ४५ पद थे। ये पद बंगाल, गुजरात और राजस्थान में प्रचलित गीतों से संग्रह किए गए थे। सं० १९६० में मुंशी देवीप्रसाद को राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज में दो ऐसे संग्रह मिले थे जिनमें अन्य भक्तों के साथ मीराँ के पद भी संग्रहीत थे। ये संग्रह भी सम्भवतः जनता में प्रचलित गीतों के आधार पर हुए थे और ऐतिहासिक दृष्टि से 'रागकल्पद्रुम' से कुछ प्राचीन थे। हिन्दी में केवल मीराँ के ही पदों का सबसे पहला संग्रह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से 'मीराँबाई के भजन' नाम से प्रकाशित हुआ था जिसकी द्वितीयावृत्ति सं० १९७० में हुई थी। इस छोटी सी पुस्तिका में मीराँ के नाम से प्रचलित कुछ थोड़े से पदों का संग्रह था जिनमें अधिकांश मीराँ की प्रामाणिक रचनाएँ न थीं। इसी समय गुजरात में एक वृहत् काव्य-संग्रह ग्रंथ 'वृहत काव्य दोहन' के नाम से दश जिल्दों में प्रकाशित हुआ जिसमें मीराँ के गुजराती पदों का संग्रह था। ये पद संख्या में दो सौ से भी ऊपर थे। इसके पश्चात् वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से 'मीराँबाई की शब्दावली' नाम का एक प्रामाणिक संग्रह ग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसमें सब मिलाकर १६८ पद हैं। इन पदों में संतो की परम्परा से प्रभावित पद ही अधिक संख्या में मिलते हैं। अस्तु, यह संग्रह भी बहुत कुछ एकांगी हो गया है। इसके पश्चात् और भी कितने छोटे-बड़े संग्रह ग्रंथ प्रकाशित हुए जिनमें प्रमुख नरोत्तमदास स्वामी की 'मीराँ-मंदाकिनी' और परशुराम चतुर्वेदी की 'मीराँबाई की पदावली' हैं। अंतिम पुस्तक बड़े परिश्रम से सम्पादित है और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हुई है। जयपुर के पुरोहित हरिनारायण जी के पास मीराँ के लगभग ५०० पद संग्रहात हो गए हैं।

सब मिलाकर भी मीराँ के नाम से प्रचलित पदों की संख्या अधिक नहीं है—सम्भवतः गुजराती पदों को मिलाकर भी संख्या चार सौ के ही लगभग पहुँचेगी; परन्तु इन थोड़े से पदों में भी मीराँ के रचित पद सम्भवतः कम ही हैं। अधिकांश पदों की प्रामाणिकता में बहुत संदेह है। मीराँ के जीवन-काल की घटनाओं से सम्बद्ध पदों के सम्बंध में पहिले कुछ विचार किया जा



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



चुका है और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उनमें अधिकांश पद मीराँ की रचनाएँ नहीं हैं, परंतु कुछ विशेष कारणों से मीराँ के नाम से प्रचलित हो गई हैं। अन्य पदों के सम्बन्ध में भी हमें बहुत कुछ इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है। मीराँ का प्रभाव-क्षेत्र गुजरात से लेकर बंगाल तक रहा है, अतः एक प्रांत में मीराँ के सम्बंध में जो रचनाएँ होती थीं वे अन्य क्षेत्र में मीराँ की रचना समझ ली जाती थीं। इसका एक उदाहरण 'साहित्य-रत्नाकर' नामक संग्रह-ग्रंथ में मिलता है, जिसमें देव-रचित दो कवित्त मीराँ की रचनाएँ मान ली गई हैं। सम्भव है इस प्रकार के और भी कितने उदाहरण हों। इस विस्तृत प्रभाव-क्षेत्र के कारण एक ही पद भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है।

परंतु मीराँ की पदावली में अप्रामाणिक पदों की मिलावट का सबसे बड़ा कारण यह है कि उत्तर-पश्चिम भारत में मीराँ माधुर्य-भाव की भक्ति की प्रतीक हैं, जिस प्रकार कबीर निर्गुण भाव की भक्ति के। पीछे के संतो ने जिस प्रकार 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' लिखकर कितने ही निर्गुण पदों को कबीर की रचना में शामिल कर दिया, उसी प्रकार 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' लिखकर कितने ही लीला और मधुर भाव के पद मीराँ के नाम से प्रचलित करा दिए गए जो मौखिक-परम्परा से प्रचार पाकर आज मीराँबाई की रचनाएँ समझी जाने लगी हैं। आज मीराँ के नाम से सैकड़ों पद मिलते हैं वे सभी उस मधुर भाव की प्रतिमा मीराँ की रचनाएँ नहीं हैं, वरन् मीराँ की भक्ति-भावना के प्रति श्रद्धा रखने वाले एक समुदाय की रचनाएँ हैं जिनमें मीराँ प्रतीक रूप में विद्यमान हैं। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से मीराँ के नाम से प्रसिद्ध अधिकांश पद अप्रामाणिक अवश्य हैं, परन्तु भावना की दृष्टि से उन सभी पदों को मीराँ की रचना मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि प्रतीक रूप में वे मीराँ की ही रचनाएँ हैं; केवल शब्द-रचना मीराँ की नहीं है।

———

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# दूसरा अध्याय

## भक्तियुग और मीराँ

हिन्दी के भक्त कवियों में मीराँबाई का एक विशिष्ट स्थान है। इस महान् कवि के प्रति हिन्दी संसार की उदासीनता अद्भुत अवश्य है, परंतु आश्चर्यजनक नहीं। जिसकी कविता में साहित्यिक कृत्रिमता का लेश भी नहीं, जिसने जन-समुदाय को आकर्षित करने का कोई प्रयास नहीं किया; केवल अपनी भक्ति-भावना के उल्लास में भक्ति और प्रेम के मधुर गीत गाए, अपने विरह-विधुर हृदय का भार ही हलका किया, जिसकी कोई शिष्य-परम्परा नहीं, जिसका कोई पंथ अथवा सम्प्रदाय नहीं, उसके प्रति यदि हिन्दी संसार उदासीन है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु हिन्दी प्रांत के बाहर हिन्दी के इस मधुर कवि का सबसे अधिक मान और प्रचार है—गुजरात और बंगाल में मीराँ के पद घर-घर गाए जाते हैं; राजस्थान की तो मीराँबाई सर्वस्व ही हैं। फिर सूर, तुलसी, कबीर और विद्यापति के युग की भक्ति-भावनाओं का जैसा शुद्ध और सुंदर स्वरूप मीराँ के पदों में मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं दुर्लभ और दुष्प्राप्य है।

### १

भारत की धार्मिक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर सर्वप्रथम हमें धर्म के बाह्य आचारों और उपकरणों के दर्शन होते हैं जो वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में कर्म-कांड के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका प्रारम्भ ऋग्वेद की उन ऋचाओं से माना जा सकता है जिनमें उषा, वरुण, इंद्र, मरुत्, अग्नि इत्यादि प्रकृति की दैवी शक्तियों की प्रशस्तियाँ मिलती हैं, वही अथर्ववेद में बहुत नीचे उतर कर जादू और टोना के रूप में परिणत हो गया है और इसका चरम विकास ब्राह्मण ग्रंथों में होता है जहाँ विविध संस्कारों तथा यज्ञों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। दूसरी ओर उपनिषदों में इन बाह्य आचारों और उपकरणों का उपहास किया गया है ( देखिए श्वान उद्गीथ-छांदोग्योपनिषद् ) और धर्म के आंतरिक पक्ष पर अधिक जोर देकर ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान की आवश्यकता प्रमाणित की गई है। आगे चलकर धर्म की इन बाह्य और आंतरिक प्रवृत्तियों के समन्वय का भी प्रयत्न किया गया। परंतु जहाँ इन दोनों पक्षों के समन्वय और सामंजस्य का प्रयत्न किया जा रहा था, वहाँ गौतमबुद्ध ने इन-दोनों का विरोध करके एक लौकिक धर्म की व्यवस्था की जिसमें कर्म-कांड का घोर विरोध था, साथ ही उपनिषदों के ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान की भी उपेक्षा की गई थी। यह मानव-आचरण और जीवन का धर्म था, वह पुरुषार्थ और कर्म का मार्ग था। अभी तक इन सभी धार्मिक प्रवृत्तियों में मानव-हृदय का सम्पर्क नहीं हो सका था, केवल बुद्धि ( ज्ञान ) और क्रिया ( कर्म ) इन्हीं दो को प्रधानता दी गई थी। इसी समय एक ऐसी धार्मिक प्रवृत्ति का उदय हुआ जो अद्भुत और अभूतपूर्व था। इस प्रवृत्ति में कर्म-कांड के प्रति कोई आस्था न थी, ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान के प्रति कोई आकर्षण न था और साथ ही बौद्धों के सेवा, दया और प्रेम के धर्म से पूर्ण संतोष भी न था। इसमें भगवान् के प्रति दृढ़ आस्था थी, उनकी दया, करुणा और भक्तवत्सलता पर पूर्ण विश्वास था और उनसे व्यक्तिगत निकट सम्बंध स्थापित करने की उत्कट इच्छा थी। यह व्यक्तिगत हृदय का धर्म था जिसे विद्वानों ने भक्ति-धर्म की संज्ञा प्रदान की है।

इस भक्ति-धर्म का कब और कैसे उदय हुआ, इसका निश्चित ज्ञान नहीं है, परंतु इसकी सर्वप्रथम स्पष्ट व्याख्या श्रीमद्भगवद्गीता में मिलती है जहाँ स्वयं भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण ने ज्ञान और कर्म के साथ ही साथ भक्ति का उपदेश किया था। परंतु जिस भक्ति-धर्म ने एक विस्तृत जन आंदोलन का रूप धारण किया, वह भगवद्गीता का ज्ञान-कर्म-समन्वित भक्तियोग न था, वरन् नारद भक्ति-सूत्र तथा भागवत का विशुद्ध भक्ति मार्ग था।[1] इस विशुद्ध भक्ति

१ नारद ने भक्ति को 'स्वयंप्रमाण' माना है। यह भक्ति, ज्ञान और कर्म से स्वतंत्र है, पूर्ण शांति और पूर्ण आनंद इसकी दो विशेषताएं हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



भावना का वास्तविक स्वरूप जिसने सर्वप्रथम साधारण जनता को आकृष्ट किया, वह आलवार कवियों का मधुर गान था। दक्षिण भारत के तमिल प्रांत में ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर दशवीं शताब्दी तक लगभग तीन सौ वर्षों के लम्बे समय में एक के बाद एक कवि-गायक पैदा होते गये। वे मंदिर-मंदिर में घूमकर अपने इष्टदेव की मूर्ति के सामने आनंद-विभोर हो काव्य-रचना करते और गाते रहते थे। इनमें कितने शैव भी थे और कितने वैष्णव। वैष्णव कवि-गायकों में बारह विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए और उन्हीं बारह कवि-गायकों को आलवार[1] की संज्ञा प्रदान की गई। वे जाति-बहिष्कृत तथा शूद्रों को भक्ति का उपदेश करते थे और उनमें कितने ही स्वयं जाति-बहिष्कृत थे। इन्हीं आलवारों के मधुर संगीत में सबसे पहले विशुद्ध भक्ति-भावना प्रस्फुटित हो उठी थी, जिसने आगे चलकर मनीषियों और शास्त्रज्ञ विद्वानों को भी आकृष्ट किया।[2] नाथ मुनि, यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य भी इन आलवारों से बहुत प्रभावित हुए थे। इस भक्ति-भावना ने विद्वानों को भी आकृष्ट किया इसीलिए इसका भी शास्त्र बनना आवश्यक हो गया और हृदय की एक मधुर भावना को लेकर कितने तत्वों का चिन्तन प्रारम्भ हो गया, शास्त्र बनने लगे, संहिताएँ लिखी जाने लगीं, पुराणों की सृष्टि हुई, न जाने कितने खंडन-मंडन प्रारम्भ हो गया। नारद भक्तिसूत्र में एक सूत्र है 'वादो नावलम्ब्यः' अर्थात् भक्त को वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, परन्तु इसी भक्ति को लेकर कितना वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ उसकी कोई सीमा नहीं। कवि की एक सरल सुंदर भावना लेकर दार्शनिकों और धर्माचार्यों ने एक वृहत् आंदोलन आरंभ कर दिया जो धर्म के इतिहास में भक्ति आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१ १२ आलवारों के नाम इस प्रकार हैं: पायगैर, भूतात्तू, पेयार, तिरुमलिसाइ, शठकोप अथवा नम्मालवार मधुर कवि, कुलशेखर, पेरियर, अन्दल, तोन्दरिपोद्धि, तिरुप्पनर, तिरूमंगाइ। इनमें अंदल स्त्री थी।

२ नम्मालवार की कृतियां तमिल प्रांत में वेद के समान श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती हैं। नाथ मुनि नम्मालवार के शिष्य कहे जाते हैं जिन्होंने आलवारों के ४००० पदों का संग्रह किया था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



भक्ति-धर्म के प्रमुख आचार्य श्री रामानुज थे जिन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खंडन कर इसे एक ठोस दार्शनिक भूमि पर लाकर प्रतिष्ठित किया। उनके पश्चात् मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बार्क ने अपनी दार्शनिक विशेषताएँ प्रदर्शित कीं, परन्तु मूलरूप में उन सभी ने एक भक्ति-धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार यह भक्ति-धर्म क्रमशः अधिक प्रचार पाने लगा। दक्षिण भारत में पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लेने के बाद इस भक्ति-धर्म ने उत्तर भारत की ओर अपनी विजय-यात्रा आरम्भ की। निम्बार्क ने दक्षिण से आकर भगवान कृष्ण की लीला-भूमि व्रज में अपना केन्द्र स्थापित किया। उन्हीं से प्रभावित होकर जयदेव ने बारहवीं शताब्दी के अंत में 'गीत गोविन्द' की अमर रचना की। निम्बार्क की शिष्य-परम्परा में माधवेन्द्रपुरी और ईश्वरीपुरी तथा अंत में चैतन्य महाप्रभु ने व्रज और बंगाल में रस की धारा उमड़ा दी। इसी प्रकार दक्षिण से दीक्षित होकर स्वामी रामानंद ने काशी को अपना केन्द्र बनाया और उनके बारह शिष्य-मंडली ने मध्यदेश में भक्ति-धर्म का पूर्ण प्रचार किया। विष्णुस्वामी की शिष्य-परम्परा में वल्लभाचार्य ने व्रज-मंडल को अपना केन्द्र बनाया और पश्चिम भारत में भक्ति की मधुर धारा प्रवाहित कर दी। इस प्रकार दक्षिण से प्रारम्भ होकर यह भक्ति-धर्म क्रमशः भारत के कोने-कोने में फैल गया।

उत्तर भारत में भक्ति धर्म को अपने विकास-पथ पर दो प्रमुख प्रवृत्तियों से संघर्ष लेना पड़ा था। एक था शंकराचार्य का अद्वैतवादी ज्ञान-मार्ग जो समस्त भारतवर्ष में पंडित-समाज में मान्य था और जिसने बौद्ध धर्म जैसे विस्तृत और विशाल धर्म को जड़ से उखाड़ दिया था। यह अद्वैतवादी ज्ञान-मार्ग उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान ही था जिसे शंकराचार्य की अद्भुत प्रतिभा ने अत्यंत स्पष्ट और तर्कसंगत बना दिया था। दूसरा नाथ सम्प्रदाय का हठ-योग मार्ग था जो बौद्धों के तांत्रिकवाद और वज्रियान शाखा के आधार पर एक प्रचलित मार्ग बन गया था। इससे सम्पूर्ण उत्तर भारत प्रभावित हो रहा था। इस मार्ग के प्रमुख आचार्य मछंदरनाथ ( मत्स्येन्द्र नाथ ) के शिष्य गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) थे, जिनका प्रभाव बहुत दूर तक फैला हुआ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



था। महाराष्ट्र के प्रमुख संत ज्ञानेश्वरी गीता के रचयिता ज्ञानेश्वर इन्हीं की शिष्य-परम्परा में थे, पंजाब में पूरन भक्त गोरखनाथ का शिष्य था, गौड़ देश के राजा गोपीचंद और उसकी माता मयनावती गोरखनाथ के गुरुभाई हालीकपाव (जालंधरनाथ) के शिष्य थे। भर्तृहरि जैसा कवि और यशस्वी राजा भी गोरखनाथ से प्रभावित हुआ कहा जाता है। कथाओं में ऐसा भी प्रसिद्ध है कि मध्य युग का अर्ध-कल्पित वीर-नायक आल्हा भी गोरखनाथ का शिष्य था। उत्तर भारत के अद्विजों में इस योग का खूब प्रचार था। ईसा की बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में जो विजेता मुसलमान उत्तर भारत में फैल रहे थे उनमें भी इस योग का प्रचार फैल रहा था। प्रसिद्ध मुसलमान यात्री इब्नबतूता, जिसने मुहम्मद तुगलक के शासन-काल सन् १३३४ में भारत-यात्रा की थी, लिखता है कि उस समय योगियों का बहुत प्रभाव था। उनके अलौकिक चमत्कारों का वर्णन करते हुए वह लिखता है :

"योगीजन भी बड़े-बड़े अद्भुत कार्य कर डालते हैं। कोई-कोई तो कई मास पर्यंत बिना कुछ खाए-पिए वैसे ही रह जाते हैं; और कोई-कोई धरती के भीतर गड्ढे में बैठ ऊपर से चिनाई कराकर वायु के लिए केवल एक रंध्र छुड़वा देते हैं। वे कई मास तक, कुछ लोगों के अनुसार पूरे वर्ष भर, इसी प्रकार से रह सकते हैं।"

"मंजौर ( मंगलौर ) नामक नगर में मुझे एक ऐसा मुसलमान दिखाई दिया जो इन्हीं योगियों का शिष्य था। यह व्यक्ति एक ऊँचे स्थान पर ढोल के भीतर बैठा हुआ था। पचीस दिन पर्यंत तो हमने भी इसको निराहार और बिना जलपान के यों ही बैठे देखा परन्तु इसके पश्चात् वहाँ से चले आने के कारण फिर हमको पता न चला कि वह और कितने दिन इस प्रकार उपवास करता रहा।"

इसी प्रकार और भी योगियों के चमत्कार की बातें उस यात्री ने विस्तार-पूर्वक लिखी हैं, जिनसे पता चलता है कि मुसलमान लोग भी इस योग से प्रभावित हो रहे थे। ऐसा था वह योग-मार्ग जिससे भक्ति-धर्म को संघर्ष लेना पड़ा। अद्वैतवाद और हठयोग के अतिरिक्त बंगाल में तांत्रिक उपासना और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



शाक्त-धर्म का बड़ा प्रचार था। पंच मकारों की साधना का वह उन्मत्त मार्ग बड़ा ही घृणित था। भक्ति-धर्म को उससे भी संघर्ष लेना पड़ा था। चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में भक्ति-धर्म का डंका बजाया।

उत्तर भारत में भक्ति-धर्म ने अद्वैतवादी ज्ञान-मार्ग, हठयोग तथा तंत्र—इन तीनों मतों के सम्पर्क में आकर तीन भिन्न स्वरूप धारण किये। गिरि-शृंग से उतरने वाली स्रोतस्विनी अपने प्रवाह-पथ में जिस प्रकार भिन्न-भिन्न भू-खंडों के सम्पर्क से भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण करती है—पर्वतों से उतरते समय निर्झर के रूप में गिरिप्रांत को मुखरित करती जाती है; घने जंगलों में आँख मिचौनी खेलती हुई वक्राकार मार्ग से चक्कर काटती चलती है; और समतल भूमि-खंड में आकर प्रशस्त मार्ग पर धीरे धीरे बहती हुई कमल, सेवार तथा छोटी-बड़ी लहरियों में शोभा पाती है, उसी प्रकार भक्ति की सरस स्रोतस्विनी ने भी तीन भिन्न स्वरूप धारण किये। ज्ञान के उच्च गिरि-शृंग के सम्पर्क में आकर इस भक्ति-धारा ने सगुण लीलारूपी निर्झर का रूप धारण किया जिसमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम तथा नटनागर श्रीकृष्णचंद्र की सगुण लीला के सरस मधुर गान ने समस्त मध्यदेश को मुखरित कर दिया। एक ओर गुसाईं तुलसीदास के भगवान् राम अपनी माया-स्वरूपा सीता से कहते हैं :

सुनहु प्रियाव्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करब ललित नर लीला॥
तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लौं करहुँ निसाचर नासा॥

दूसरी ओर सूरदास के बाल गोपाल बिना किसी से कुछ कहे ही अपनी ललित बाल-लीला दिखा रहे हैं :

हरि अपने आगे कछु गावत।
तनक तनक चरनन सों नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत॥
बाँह उँचाइ काजरी-धौरी गैयन टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नन्द बुलावत, कबहुँक घर में आवत॥
माखन तनक आपने कर लै तनक बदन में नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिम्ब खम्भ में लवनी लिए खवावत॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरख अनन्द बढ़ावत ।
'सूर' स्याम के बाल-चरित ये नित देखत मन भावत ॥

दूसरी ओर योग-मार्ग के गहन कानन से चक्कर काटती हुई यह भक्ति-धारा संत कबीर की अटपटी बानी में फूट पड़ती है :

पिया मिलन की आस रहौं कब लौं खरी ।
ऊँचे नहिं चढ़ि जाय, मने लजा भरी ॥
पाँव नहीं ठहराइ चढ़ूं गिर गिर परूँ ।
फिरि फिरि चढ़उँ सम्हारि, चरन आगे धरूँ ॥
अंग-अंग थहराइ तो बहु बिधि डरि रहूँ ।
करम-कपट मग घेरि तो भ्रम में परि रहूँ ॥
बारी निपट अनारि ये तो झीनी गैल है ।
अटपट चाल तुम्हारि मिलन कस होइ है ॥
छोरो कुमति विकार, सुमति गहि लीजिये ।
सतगुरु शब्द सम्हारि, चरन चित दीजिये ॥
अन्तर पट दे खोल शब्द उर लावरी ।
दिल बिच दास कबीर, मिलै तोहि को बावरी ॥

और बंगाल प्रांत के शाक्त-धर्म एवं तंत्र-सम्मत पंच मकारों के स्थूल लौकिक जीवन के सम्पर्क में आकर यह भक्ति-धारा समतल मैदान में बहने वाली शैवाल-रंजिता मंदगामिनी सरिता की भांति जयदेव, चंडीदास और विद्यापति के पदों में कितनी सरस और मधुर हो उठी है। इन पदों में लौकिक जीवन की वह मधुर झंकार है, घरेलू स्नेह और प्रणय का वह परिचित वातावरण है जो सहसा दृष्टि को मुग्ध कर देता है। विद्यापति का एक पद देखिये :

सखि हे की पुछसि अनुभव मोय ।
सोइ पिरीत अनुराग बखानइत तिल नूतन होइ ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेला ।
सोंइ मधुर बोल श्रवनहिं सून लों श्रुति पथ परसन गेला ॥
कत मधु जामिन रभसे गमाओलों ना बुझलों कैसन केली ।
लाख लाख जुग हिय हिय रखलों तौउ हिय जुड़न न गेली ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



कत विदग्ध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख ।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाइत लाखे न मीलल एक ॥

एक ही भक्ति धारा के ये तीन स्वरूप एक दूसरे से कितने विलग और विचित्र हैं। गुसाईं तुलसीदास के राम की ललित नर लीला देखकर मुग्ध होने की वस्तु है। वह इतनी मर्यादापूर्ण और महत् है कि उस पर देवता-वृंद के फूल ही बरसा करते हैं, ऋषि-मुनियों के मुख से धन्य-धन्य की वाणी मुखरित होती रहती है और वेद तथा ब्राह्मण वंदना करते नहीं थकते। बेचारे तुच्छ मानवों के लिये तो दास्य भाव की भक्ति करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं रह जाता। गुसाईं तुलसीदास ने भक्ति और सगुण लीला का अतिशय मर्यादित रूप उपस्थित किया। बात यह थी कि वे बड़े ज्ञानी और पंडित थे, शास्त्र, पुराण, दर्शन सबके पूर्ण ज्ञाता थे, इसीलिए उनके विनय के पदों तथा सगुण लीला के कथा-प्रसंगों में मर्यादा का बहुत अधिक ध्यान रखा गया है। सूरदास की कृष्ण लीला में यद्यपि मर्यादा की इस सीमा तक पहुँचने का प्रयास नहीं है, फिर भी उसमें मर्यादा का भाव अवश्य है और वह उसी सीमा तक है जिससे ललित नर-लीला करने वाले भगवान कृष्ण ईश्वर नहीं बनते, वरन् मानव ही रहते हैं। इसके विपरीत कबीर और विद्यापति की भक्ति में न लीला का भाव है न विनय का; वहाँ तो भगवान् उनका अत्यंत निकट प्रेमी है जिसकी प्रेम की ही मर्यादा है, प्रेम की ही लीला है, प्रेम का ही विनय है। परंतु कबीर और विद्यापति की भक्ति-भावना में इतनी समानता होने पर भी उनकी मनोवृत्ति में बहुत अधिक अंतर है। कबीर का जब अपने प्रेमी से मिलन होता है, तब उस आनंद का वर्णन करते हुए कवि गा उठता है :

गगन गरजि बरसै अमी, बादर गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर॥

यह आनंद कुछ अद्भुत सा है जो सहसा समझ में नहीं आता। गूंगे के गुड़ के समान ही यह अनिर्वचनीय है। परंतु जब विद्यापति इसी आनंद का वर्णन करते हुए गा उठते हैं :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आजु रजनी हम भाग्ये पोहायनु, पेखनु पिय मुख चन्दा।
जीवन यौवन सफल करि माननु, दस दिस भो निरद्वंदा॥
आजु हम गेह गेह करि माननु, आजु मोर देह भेला देहा।
आजु बिही मोर अनुकूल होयल, टूटल सबहु संदेहा॥
सोइ कोकिल अब लाखहि डाकउ, लाख उदय करु चन्दा।
पाँच बान अब लाख बान हनु, मलय पवन बहु मन्दा॥
अब सो न जबहु मोह परिहोयत, तबहु मानव निज देहा।
विद्यापति कह अलप भागि नह धनि धनि तुअ नव नेहा॥

तब उनका यह आनन्द हमारी समझ में आ जाता है, वह निर्वचनीय है; वह ऐसा सुख है जिसमें चिड़िया-रैन-बसेरा के समान कंकड़ पत्थर का छोटा सा घर अपना घर जान पड़ता है और अंत में चिता की अग्नि में जल जाने वाला यह नश्वर शरीर अपना शाश्वत् शरीर जान पड़ता है। यह वही सुख है जैसा कवि 'प्रसाद' ने लिखा है :

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये।
यह अलस जीवन सफल अब हो गया॥
कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिन्धु है,
इस हमारे और पिय के मिलन से,
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा॥

और यह वही सुख है जिसके सम्बन्ध में जायसी ने लिखा है कि :

होतहि दरस परस भा लोना; धरती सरग भयहु सब सोना।

कबीर का आनन्द जितना ही अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण है, विद्यापति का संयोग-सुख उतना ही स्पष्ट और तीव्र है। इसी प्रकार अपने परम प्रिय के विरह में व्याकुल होकर जब कबीर कह उठते हैं :

बिरह-कमंडल कर लिए बैरागी दोउ नैन।
माँगत दरस-मधूकरी, छके रहें दिन रैन॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



तब इस बिरह में उस तीव्र वेदना के दर्शन नहीं होते जो विद्यापति के विरह में ध्वनित होता है :

सखि हे हमर दुखन नहिं ओर।
इ भर बादर माह भादर सून मन्दिर मोर॥

भक्ति के ये तीनों भिन्न स्वरूप हमें मीराँ में एक ही स्थान पर मिल जाते हैं। एक ओर गुसाईं तुलसीदास और सूरदास के विनय के पदों में अपना कंठ मिलाकर मीराँ उसी धुन में गा उठती हैं :—

राम नाम रस पीजे मनुआ राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चरचा सुण लीजे॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित से बहाय दीजे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रँग में भीजे॥

अथवा हरि तुम हरो जन की भीर॥ टेक॥

द्रोपदी की लाज राख्यो तुम बढ़ायो चीर॥
भक्त कारन रूप नरहरि धरयो आप सरीर।
हरिनकस्यप मार लीन्हों धरयो नाहिंन धीर॥ इत्यादि॥

दूसरी ओर सूरदास के कृष्ण-लीला के पदों से समानता करती हुई वे लीला के पद गा उठती हैं:—

कमल दल लोचना तैंने कैसे नाथ्यो भुजंग।
पैसि पियाल काली नाग नाथ्यो फण फण नित करन्त॥
कूद परयो न डरयो जल माहीं और काहू नहिं संक।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्री वृन्दावन चन्द॥

अथवा छाँड़ो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना॥
जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो ना।
वृन्दावन की कुंज गली में, रीत छोड़ अनरीत करो ना॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरो ना॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



तीसरी ओर कबीर और रैदास के निर्गुण पदों में रस की धारा उमड़ाती हुई मीराँ गा उठती हैं :—

भज मन चरण कँवल अविनासी।
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें; कहा लिए करवत कासी॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड़याँ उठि जासी॥ इत्यादि॥

अथवा सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती॥ टेक॥
पँचरंग मेरा चोला रंगा दे, मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमट में मेरा साईं मिलेगा खोल अडम्बर गाती॥
चंदा जायगा सुरज जायगा जायगा धरण अकासी।
पवन पाणी दोनों ही जायँगे, अटल रहे अविनासी॥
सुरत निरत का दिवला सँजाले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल बना ले, जला करे दिन राती॥
जिनके पिय परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजें पाती।
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूँ न आती जाती॥ इत्यादि॥

चौथी ओर मीराँ चंडीदास, विद्यापति तथा नरसी मेहता के मधुर भाव की भक्ति का अभिव्यंजना करती हैं :

तुम्हरे कारण सब सुख छोड़्या, अब मोहिं क्यूं तरसावो।
विरह विथा लागी उर अदर सो तुम आय बुझावो॥
अब छोड़्याँ नहिं बनै प्रभू जी, हँस कर तुरत बुलावो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग सूँ अंग लगावो॥

अथवा कानुड़े न जाणी मोरी पीर,
बाई हूँ तो बाल कुँवारी रे, कानुड़े न जाणी मोरी पीर॥ टेक॥
जल रे जमनां अमे पाणीडांगया तां,वाहला कानुडे उडाड्या आछां नीर;
उड्यां फर-र र र र र र रे; कानुड़े...१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



वृन्दा रे वन माँ वा ले राम रच्यो छे सोल से गोपीनाँ तारणयां चीर,
फाटयाँ चर रर रर रर रे; कानुड़े...॥ २ ॥
हूं वरणा गी कान्हा तमारारे नामनी रे, कानुड़े मायों छे अमने तीर
वाग्याँ अर रर रर रर रे; कानुड़े...॥ ३ ॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर, कानुड़े वाली ने फेंकी उँचे गीर;
राख उड़े फर रर रर रर रे; कानुड़े...॥ ४ ॥

[ अर्थात् कन्हैया मेरे प्रेम और विरह की पीड़ा को नहीं जानता और नहीं जानता मेरे कुमारी के प्रेम को। हम यमुना नदी से जल लाने के लिए गई थीं; वहाँ कन्हैया ने जल के छींटे उछाल कर हमें भिगो दिया। हमारे प्रियतम कन्हैया ने वृन्दाबन में रासलीला रची और सोलह सौ गोपियों के परिधान खींचे और उनके खींचने से हम लोगों के वस्त्र चर-चर करके फट गए। हे कृष्ण मैं तुम्हारे नाम के पीछे पागल हो गई हूँ तुमने बाण चलाकर मुझे बेध दिया है और वे बाण मेरे हृदय में घुसते ही जा रहे हैं। ]

भक्ति के इन स्वरूपों के अतिरिक्त एक चौथा स्वरूप भी है। सागर के समीप पहुँच कर उस अनंत महासागर में विलीन होने की प्रबल उत्कंठा जो नदी की जल-धारा में दिखाई पड़ती है वह प्रबल आवेग ही जल-धारा की प्रमुख विशेषता है। यह वेग तो धारा में निरंतर विद्यमान रहता है परंतु महा सागर के पास पहुँचकर उसका वेग अत्यन्त तीव्र हो उठता है। भक्ति का यह प्रबल आवेग, अपने प्रियतम से मिलने की यह प्रबल उत्कंठा, जितनी तीव्र मीराँ के पदों में मिलती है; उतनी और किसी भी भक्त और कवि के पदों में नहीं मिलती। बात यह है कि अपने प्रियतम के जितना समीप मीराँ पहुँच गई थीं, उतना और कोई भक्त नहीं पहुँच सका था। इसीलिए यह आवेग, यह उत्कंठा भी मीराँ में तीव्रतम है। केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा:—

मैं हरि बिनि क्यूं जिऊँ रे माइ।
पिय कारण बौरी भई,ज्यूँ काठहि घुन खाइ॥
औखद मूल न संचरै, मोसि लाग्यो बौराइ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



इस प्रकार मीराँबाई के पदों में उस युग की सभी प्रमुख भावनाओं की अत्यंत सुंदर व्यंजना मिल जाती है। मीराँ भक्ति-युग की प्रतिनिधि कवि हैं। यह प्रतिनिधित्व कितना महत्वपूर्ण और व्यापक है, इसका कुछ आभास इसीसे मिल सकता है कि बंगाल से लेकर गुजरात तक और पंजाब से लेकर काशी तक एक अति विस्तृत भूमि-खंड में जितनी भी प्रकार की भक्ति-भावनाएँ प्रचलित थीं, लगभग उन सभी भावनाओं की एक ही अत्यंत सुंदर अभिव्यंजना मीराँ के पदों में मिलती है। यह सच है कि मीराँ के पद संख्या में बहुत ही कम हैं, अतएव, प्रत्येक भक्ति-भावना पर उनके अधिक पद नहीं मिलते, परंतु जो भी थोड़े पद उपलब्ध होते हैं, प्रभाव और सौन्दर्य में वे किसी से पीछे नहीं रहते।

## २

भक्ति-धर्म के इतिहास में, हम पहले ही देख चुके हैं कि भक्तों के दो विशिष्ट समुदाय थे, एक तो कवि गायकों का, दूसरा आचार्यों का। आलवार कवि-गायक थे और रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी तथा निम्बार्क आचार्य थे। आलवारों के अंतः प्रदेश के भक्ति-भावना का उल्लास, प्रेम और भक्ति का अदम्य आवेश, उसकी धारा के समान फूट निकला था; उसमें सहजोद्रेक था, भाव-प्रवणता और था एक तीव्र आवेग जो सभी बाधाओं को ठेलता हुआ निरन्तर आगे ही बढ़ता गया। परन्तु आचार्यों के दार्शनिक चिन्तन में इस प्रकार का कोई आवेग नहीं था, उसमें तर्क था, विवाद था और था मस्तिष्क का मथन और आलोड़न। रूपक की भाषा में कहा जा सकता है कि आलवारों का गान पहाड़ी नदी की भाँति सहज और स्वच्छंद था और आचार्यों के सिद्धांत इंजीनियरों की बनाई प्रशस्त राजमार्ग की भांति एक नहर थी जो उस नैसर्गिक धारा से निकालकर जनता के शुष्क और नीरस हृदयों को अभिसिंचित करने के लिए बनाई गई थी। एक ओर ज्ञान-विज्ञान की बाधाओं को ठेलकर हृदय का उल्लास निर्झरिणी की जल-धारा की भाँति उमड़ पड़ा था तो दूसरी ओर यह हृदय का उल्लास ज्ञान-विज्ञान की सीमाओं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



में बाँध कर साधारण जनता के उपयोग के लिए संचित किया गया था। उत्तर भारत में जिन कवियों और आचार्यों ने भक्ति की सरलधारा प्रवाहित की थी उनमें भी स्पष्ट दो वर्ग थे। आचार्यों में स्वामी रामानंद और महाप्रभु बल्लभाचार्य तो विशुद्ध आचार्य थे जिन्होंने बाद और तर्क से, उपदेश और निदेश से, शिक्षा और दीक्षा से लोगों को भक्ति का उपदेश किया, परंतु चैतन्य महाप्रभु कवि गायक श्रेणी के आचार्य थे, जिन्होंने अपनी भक्ति भावना के आवेश से जनता को आकृष्ट किया था। इसी प्रकार भक्त कवियों में भी स्पष्ट दो वर्ग थे। एक वर्ग विशुद्ध कवि-गायकों का था और दूसरा वर्ग आचार्यों का। जयदेव, चंडीदास, विद्यापति और मीराँबाई अपनी भक्ति-भावना के उल्लास में रस की धारा उमड़ाने वाले विशुद्ध कवि गायक थे और गुसाईं तुलसीदास, कबीर और नंददास भक्ति-धर्म का मार्ग प्रशस्त करने वाले कवि-आचार्य थे, विशुद्ध कवि-गायक नहीं। एक मध्य श्रेणी अंधे कवि सूरदास की थी जो वास्तव में कवि-गायक थे परंतु संसर्ग-दोष से उन्हें आचार्यत्व भी करना पड़ा।

भक्त कवियों में प्रमुख कवि आचार्य गोसाईं तुलसीदास थे जिन्होंने 'कलि-कुटिल-जीव-निस्तार-हित' एक ऐसे 'मानस' की व्यवस्था की जिसके एक अक्षर के उच्चारण-मात्र से सभी पाप धुल जाते थे। यह सच है कि रामचरित मानस के आरम्भ में ही गोसाईं जी ने स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है कि :—

"स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति"

परन्तु बालकांड में राम-कथा प्रारम्भ करने के पहले जो अति विस्तृत भूमिका दी गई है उसे पढ़कर कोई भी नहीं कह सकता कि यह कथा केवल 'स्वान्तः सुखाय, लिखी गई थी। सच तो यह है कि जनता को राम-भक्ति के प्रति आकृष्ट करने का जितना सफल प्रयास रामचरित-मानस में मिलता है उतना शायद ही और कहीं मिल सके। कथा और प्रसंग से, तर्क और बुद्धि से, प्रतीत और प्रमाण से, उपदेश और निदेश से, जितनी प्रकार भी सम्भव था, गुसाईं तुलसीदास ने राम-भक्ति को सबसे अधिक सहज, सुलभ और फलदायक प्रमाणित किया। भक्ति-भावना का मार्ग प्रशस्त करने वाले वे एक अत्यन्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सफल कवि-आचार्य थे। ऊपर जिस रूपक का निर्देश किया गया है, उसकी भाषा में कहा जा सकता है कि जनता के लिए राम-भक्ति को सुलभ बनाने वाले 'मानस' के रचयिता तुलसीदास एक सफल इञ्जीनियर थे। राम की भक्ति-धारा को उन्होंने जिस कौशल से अपने रामचरित-मानस में बाँधा है, उसका पूरा विवरण मानस-रूपक में मिलता है। कवि के शब्दों में ही देखिए:

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरखहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेमभगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सलिल श्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

सुठि सुन्दर संवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचार।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥
राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥
छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ज्ञान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥ इत्यादि

इस प्रकार मनोहर घाट से बँधे सप्त-सोपान-संयुक्त निर्मल-जल, कमल, मुक्ता, मीन और मराल से सुशोभित एक परम पवित्र निष्कलुष मानस की व्यवस्था करना तुलसीदास जैसे कवि-इंजीनियर का ही कौशल है। इसी कारण तुलसीदास भक्तियुग के सबसे बड़े कवि-आचार्य हैं। परन्तु मीराँबाई ने इस प्रकार का कोई कौशल नहीं दिखाया। वे एक विशुद्ध कवि-गायिका थीं;



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



उनकी भक्ति-भावना नैसर्गिक जल-धारा के समान स्वच्छंद भाव से प्रवाहित हुई है। जिस प्रकार गुसाईं तुलसीदास भक्तियुग के सबसे बड़े कवि-आचार्य हैं, उसी प्रकार मीराँ उस युग की श्रेष्ठतम कवि-गायक हैं।

यहाँ सूर, तुलसी, कबीर और मीराँ का एक तुलनात्मक विवेचन अप्रासंगिक न होगा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है सूरदास और तुलसीदास ने ज्ञान के गौरव-गिरिशृंग पर भक्ति की सरस धारा उमड़ाई थी अतएव उनकी कविता में भक्ति और ज्ञान का संघर्ष स्पष्टरूप से मिलता है। जनता को भक्ति की ओर आकृष्ट करने के लिए भक्ति को ज्ञान से, सगुणोपासना को निर्गुणोपासना से श्रेष्ठ प्रमाणित करने की परम आवश्यकता थी। तुलसीदास ने इस समस्या को पौराणिक ढंग से सुलझाया। रामचरित-मानस में न जाने कितनी बार भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बतलाया गया है। कितनी बार तो स्वयं परब्रह्म परमेश्वर स्वरूप भगवान् रामचंद्र ने अपने श्रीमुख से ही भक्ति की श्रेष्ठता घोषित की है। उत्तरकांड में वे स्वयं कहते हैं कि :

'भगतिवंत अति नीचहु प्रानी। मोहि प्रान सम अस मम बानी।'

और लक्ष्मण को ज्ञान तथा भक्ति का उपदेश करते हुए वे कहते हैं ;

जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

ज्ञान और विज्ञान सबको भगवान राम ने अपनी भक्ति के अधीन बतलाया। इसी प्रकार उत्तरकांड में गुरु, ब्राह्मण, पुरवासी, बन्धुगण तथा मुनि-समाज के सामने भगवान् ने उपदेश करते हुए कहा था :

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन महुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावै कोऊ। भगति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥
भगति सुतंत्र सकल सुख खानी। ... ... ... ... ...

और अंत में भक्ति की विशेषता बतलाते हुए कहा था :

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥

सारांश यह कि भक्ति-मार्ग अत्यन्त सरल है; इसमें न योग साधना पड़ता है, न यज्ञ करना पड़ता है, न जप तप का काम है, न उपवास का। परन्तु भक्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



की सबसे बड़ी विजय सती-मोह प्रसंग में दिखाई गई है जो गुसाईं तुलस दास की अपनी सूझ है। इस प्रसंग में सती ज्ञान की प्रतीक है और शिवजी भक्ति के। लीलाप्रिय भगवान् राम को सीता के वियोग में विकल देखकर सच्चे भक्त शिव जी तो पुलकित हो उठते हैं, परंतु ज्ञान की प्रतीक सती के हृदय में कितनी ही शंकाएँ उठती हैं :

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥
विष्णु जो सुर हित नर तनु धारी। सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी।
खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी॥

और इन शंकाओं से प्रेरित होकर जब वह राम की परीक्षा लेने जाती है, तब उसे अपने ज्ञान की तुच्छता का बोध होता है और फिर शंकर द्वारा परित्यक्त होकर, पिता द्वारा अपमानित होकर उसे अपना शरीर भस्म करना पड़ता है। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति के संघर्ष में ज्ञान पराजित ही नहीं होता उसे अपना अस्तित्व ही मिटा देना पड़ता है। सती जब दूसरा अवतार धारण करके गौरी के रूप में जन्म लेती है तब वह भी शिव जी की ही भांति भक्त है, ज्ञानी नहीं। इस प्रकार एक पौराणिक कथा के रूप में तुलसीदास ने ज्ञान का मूलोच्छेद ही कर डाला।

दूसरी ओर सूरदास ने भी ज्ञान के ऊपर भक्ति की विजय दिखाई, जो भागवत की परम्परा में होते हुए भी कवित्वपूर्ण और सुंदर है। सूर ने भक्ति की प्रतीक गोपियों को समझाने के लिये ज्ञान के प्रतीक उद्धव को ला खड़ा किया और इस प्रकार भक्ति और ज्ञान का संघर्षदिखला कर भक्ति की विजय दिखाई। यह विजय तर्क की विजय नहीं थी जैसी कि शंकराचार्य ने अपने प्रतिद्वंद्वियों पर प्राप्त की थी वरन् यह भावना की विजय थी। तर्क की दृष्टि से भक्ति और ज्ञान में कोई संघर्ष ही नहीं। ज्ञान और भक्ति का अंतर स्पष्ट करते हुए सच्चे कवि-हृदय सूर ने उद्धव से कहलवाया है :

हौं इक बात कहत निर्गुन की बाही में अटकाऊँ।
वै उमड़ी वारिधि तरंग ज्यों जाकी थाह न पाऊँ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



भक्ति-भावना समुद्र की एक तरंग के समान है जो अचानक ही उठ कर तट-प्रांत को जलमय कर देती है। उसकी कोई सीमा नहीं कोई थाह नहीं, कोई आदि नहीं, कोई अंत नहीं। एक बार जग जाने पर वह कोई अवरोध नहीं मानती। दूसरी ओर ज्ञान एक ऊँचे पर्वत के समान है, उच्च, गम्भीर और गहन। ज्ञान के गहन मार्ग पर चलने वाले उद्धव भक्ति के इस तरल आवेग से अभिभूत हो गये, यही भक्ति की सच्ची विजय थी। कवि-हृदय सूर ने भक्ति की ऐसी कवित्वपूर्ण विजय दिखाई है कि हृदय मुग्ध हो जाता है।

परंतु मीराँ को ज्ञान से कोई मतलब ही न था। वह भक्त थीं, अतएव भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु से उनका कोई सम्बंध न था, संघर्ष न था, द्वेष न था ईर्ष्या न थी। भक्ति को ज्ञानसे श्रेष्ठ समझकर तो उन्होंने भक्ति की नहीं थी, इसीलिए भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ प्रमाणित करने की उन्हें कोई आवश्यकता ही न पड़ी। जिस समय उद्धव गोपियों के पास श्रीकृष्ण का संदेश लेकर आए उस समय मीराँ की गोपियों ने कोई तर्क नहीं किया, कोई उपालम्भ नहीं सुनाया, केवल अपने अंतरतम की पीड़ा सरलतम शब्दों में प्रकट कर दिया :

अपणे करम को वो छै दोस काकूँ दीजै रे ऊधो ॥ अपणे० ॥टेक॥
सुणियो मेरी बगड़ पड़ोसण, गेले चलत लागी चोट।
पहली ग्यान मान नहिं कीन्हौ मैं ममता की बाँधी पोट।
मैं जाण्यूं हरि नाहिं तजेंगे, करम लिख्यो भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारो नी सोच॥

[ मीराबाई की पदावली पद सं० १८४ पृ सं० ८७ ]

मीराँ की गोपियों ने मीराँ की ही भाँति कुछ समझ बूझ कर तो प्रेम और भक्ति की नहीं थी; वह प्रेम और भक्ति तो रास्ते चलते अचानक चोट लग जाने जैसी बात थी, उसके कारण यदि विरह व्यथा सहनी ही पड़ी तो दोष केवल अपने कर्म का है। भक्ति की मीराँने कितनी सुंदर व्याख्या की है—'गेले चलत लागी चोट।' जीवन-पथ पर चलते हुए यह जो अचानक हृदय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



को चोट-सी लग गई है उसे ज्ञान से श्रेष्ट किस प्रकार कहा जा सकता है। इसीलिए मीराँ ने केवल अपने चोट का, अपनी व्यथा का ही वर्णन किया; ज्ञान से उसकी तुलना न की। इतना ही नहीं उस अनंत विरह-व्यथा से व्याकुल होकर कभी तो ये प्रेम करने की ही मनाही करना चाहती हैं। अपने गिरधर नागर से उपालम्भ-स्वरूप उन्होंने कहा भी है :—

जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होइ।
नगर ढिंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोइ॥

सूर और तुलसी ने भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ प्रमाणित किया तो कबीर ने भक्ति को योग और बाह्य आचारों से श्रेष्ठ बतलाया। योगियों का उपहास करते हुए वे कहते हैं :—

मन न रँगाए, रँगाए जोगी कपड़ा।
आसन मार मंदिर में बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।
जंगल[1] जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी होइ गैले हिजरा॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रँगौले, गीता बाँच के होइ गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवा बाँधल जैबे पकड़ा॥

यह डाँट-फटकार केवल फटकार ही नहीं है, इसके पीछे 'मन रँगाने' के प्रति जो उत्कट विश्वास और दृढ़ आस्था है; उसकी उपादेयता और श्रेष्ठता में जो अटल विश्वास है वही कबीर की कविता की जान है। कबीर भक्ति को सभी मार्गों[2] में सुलभ और श्रेष्ठ मानते हैं और उसीका उपदेश करते हैं, परंतु उनका ढंग न सूर जैसा कवित्व पूर्ण है न तुलसीदास जैसा पौराणिक, वह खंडन-मंडन की प्रकृति से पूर्ण एक सुधारक जैसा ढंग है, जिसमें व्यंग्य और उपहास की मात्रा कुछ आवश्यकता से अधिक हो गई है। फिर भी उनकी उक्तियों में बल है और है आत्मविश्वास। संतों की समाधि से श्रेष्ठ अपनी भक्ति की सहज समाधि का वे किस निर्द्वन्द्वता से वर्णन करते हैं :—

संतों, सहज समाधि भली।
साँइ ते मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अंत चली॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आँख न मूँदूँ, कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूँ , सुन्दर रूप निहारूँ ॥
कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन, जो कछु करूँ सो पूजा ।
गृह उद्यान एक सम देखूँ , भाव मिटाऊँ दूजा ॥
जहँ जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत, पूँजूँ और न देवा ॥इत्यादि॥

परंतु मीराँ को योग से, बाह्य आचारों से, किसी से भी द्वेष नहीं, किसी से घृणा नहीं। जिससे लगन लगी है उससे मिलने के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं। जिससे उनका मन रँग गया है, उससे मिलने के लिये यदि कपड़ा रँगाना पड़े, पत्थर पूजना पड़े, आसन मारना पड़े यहाँ तक कि काशी में आरा से धड़ भी चिरवाना पड़े तो भी कोई आपत्ति नहीं। इसीलिए तो वे कहती हैं :—

बाल्हा मैं बैरागण हूँगी हो ।
जी जी भेष म्हारो साहब रीझे सोइ सोइ भेष धरूँगी हो ॥

और अपने गिरधर नागर को संबोधित करके वे कहती हैं :—

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी ।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, तलफ तलफ जिय जासी ॥
तेरे खातर जोगण हूँगी , करवत लूँगी कासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की दासी ॥

मीराँ ने अपनी भक्ति में इस सीमा तक आत्मसमर्पण कर दिया था कि किसी मत अथवा मार्ग से उन्हें कोई राग था न द्वेष। अपनी सिद्धि प्राप्ति के लिये वे कोई भी मार्ग स्वीकार करने को तैयार थीं—ज्ञान, योग और कर्म-कांड किसी के प्रति उपेक्षा का भाव उनमें न था। आखिर ये सभी मार्ग तो उन्हीं के पास पहुँचने के लिये हैं फिर किसी के प्रति घृणा क्यों? जिस मार्ग से प्रियतम के देश तक पहुंचने को सुविधा हो मीराँ उसी को स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं। परकीया साधना से लेकर योग-साधना तक सब साधना उन्हें स्वीकार है। वे लिखती हैं :—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



चलाँ वाही देस प्रीतम पावाँ, चलाँ वाही देस।
कहो कुसुम्बी सारी रँगावाँ, कहो तो भगवा भेस॥
कहोतो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सुनियो विरद नरेस॥

यह जो कर्म-कांड और हठ-योग, ज्ञान और भक्ति मार्गों की संकीर्णताओं को दूर हटाकर मीराँ केवल अपने गिरधर नागर के प्रति आसक्त हैं, यह उन्हीं जैसे उदार कवि-हृदय की विशेषता है। जिस युग में भक्तगण ज्ञान, योग और कर्म-कांड की निन्दा कर अपने मार्ग-विशेष की श्रेष्ठता प्रमाणित करने में ही अपने कवि-कर्म की सफलता समझते थे, उसी युग में समस्त संकीर्णताओं का उल्लंघन कर विशुद्ध भक्ति-भावना का आदर्श उपस्थित करना मीराँबाई के ही बाँट में पड़ा था।

## ३

भक्ति काव्य और साहित्य की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि वह जीवन से बहुत निकट था। यों तो जीवन और साहित्य का इतना घनिष्ट सम्बंध है कि साहित्य का जीवन के निकट होना उसका आवश्यक गुण है, कोई विशेष गुण नहीं, परंतु मध्यकालीन भारतीय साहित्य के लिये यह सामान्य नहीं विशेष गुण ही मानना चाहिए। जहाँ पठन-पाठन और शिक्षा का अधिकार कुछ विशेष वर्णों के लिये ही सुरक्षित था, जहाँ आचार और व्यवहार में, जाति-जाति में, वर्ण-वर्ण में, मनुष्य-मनुष्य में भेद-भाव की स्पष्ट रेखाएँ खिंची हुई थीं वहाँ साहित्य का जीवन के साथ निकट सम्बंध हो ही कैसे सकता था। फिर जब से साहित्य-शास्त्र ने साहित्य और काव्य को प्रभावित करना प्रारम्भ किया और जब से साहित्य-शास्त्र पर भी व्याकरण, दर्शन और न्याय शास्त्र की छाया पड़ने लगी तबसे केवल सहृदय ही काव्य के अधिकारी माने जाने लगे, शेष व्यक्तियों का काव्य में प्रवेश अनधिकार चेष्टा समझी गई। इसका फल यह हुआ कि साहित्य जीवन से निरंतर दूर ही होता गया। ऐसे वातावरण में भक्ति साहित्य का जीवन के अत्यंत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



निकट होना उसकी प्रमुख विशेषता समझी जायगी। बंगाल और मिथिला प्रांत में वैष्णव कवि जीवन के निकट अवश्य पहुँच गये थे परन्तु वे भी जीवन के इतना निकट नहीं पहुँच सके जितना मध्यदेश के महाकवि सूर, तुलसी, मीराँ और कबीर पहुँच सके थे। बात यह थी कि भक्त होते हुए भी वे कवि-गण नायिका-भेद की परम्परा से एक दम मुक्त न हो सके थे, परन्तु सूर, तुलसी, मीराँ और कबीर उस परम्परा से एकदम मुक्त थे। इनमें मीराँ और कबीर तो सभी साहित्यिक परम्पराओं से मुक्त थे।

गुसाईं तुलसीदास ने सम्पूर्ण हिन्दू-समाज को रामचरित-मानस का विषय बनाया। क्षत्रिय जाति में प्रसिद्ध रघुवंश में जन्म लेकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ने त्रैलोक्य-विजयी महापराक्रमी दुरन्त राक्षसराज रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, कबंध और विराध प्रभृति का ही बध नहीं किया, गो-ब्राह्मणों का प्रतिपालन भी किया; वशिष्ठ और विश्वामित्र, अत्रि और अगस्त, सुतीक्ष्ण और वाल्मीकि आदि महर्षिगणों को अपने शील धर्म से प्रसन्न कर उनके स्नेह भाजन भी बने; महाराज दशरथ और विदेहराज जनक के सत्य धर्म की रक्षा भी की; सुग्रीव और विभीषण, जामवंत और जटायु से मैत्री-धर्म का निर्वाह भी किया; निषाद और हनुमान की सेवा ग्रहण की; शबरी पर विशेष कृपाकर उसका आतिथ्य स्वीकार किया; जनकपुर के निवासियों और वन-यात्रा करते समय मार्ग में ग्राम-बंधुओं को अपने शील सौन्दर्य से मुग्ध किया; और माता, बंधु, पत्नी तथा प्रजा सबसे समुचित शील धर्म का निर्वाह कर वे हिन्दू समाज के आदर्श और आराध्य बने। सच तो यह है कि गुसाईं तुलसीदास ने सम्पूर्ण हिन्दू-समाज को 'राममय' कर दिया।

सूरदास ने सम्पूर्ण हिन्दू जाति को नहीं केवल गोकुल गाँव के एक छोटे से समाज को लिया। गो, गोप और गोपियों के बीच मनमोहन श्याम ने जो रस की धारा उमड़ाई, वह केवल गोकुल तक ही सीमित न रह सकी, वरन् समस्त भारत उस रस में निमग्न हो गया। अंधे कवि सूरदास की दृष्टि उस व्यापक समाज की ओर नहीं गई जहाँ गुसाईं तुलसीदास ने अपने भगवान् राम को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



प्रतिष्ठित किया था, परन्तु गोकुल गाँव के सरल और सरस जीवन में ही सूर ने कुछ ऐसा माधुर्य भर दिया कि मुसलमान कवि रसखान भी उस सरल जीवन पर तीनों लोकों का राज्य निछावर करने को प्रस्तुत हो गया था।[1]

मीराँ ने न तो हिन्दू-समाज को लिया, न गाँव अथवा घर के एक छोटे से समाज को। उस कवि-गायिका का क्षेत्र एक व्यक्ति तक ही सीमित रहा और उस व्यक्ति-विशेष के भी केवल विरह-निवेदन की ओर मीराँ की विशेष रुचि रही। इस सीमित दृष्टिकोण ने जहाँ उनकी व्यापक भक्ति भावना को क्षति पहुँचाई, वहाँ भावों की गहराई में मीराँ अद्वितीय प्रमाणित हुईं। उन्होंने समस्त राष्ट्र और जाति को, गाँव और घर के सरल समाज को राममय और कृष्णमय नहीं किया, परंतु गिरधरनागर के प्रेम में उन्मत्त अपने व्यक्तित्व को ही इतना ऊँचा उठा दिया कि उनके मधुर संगीत पर, उनके एक-एक पद पर केवल हिन्दू समाज ही नहीं मानव मात्र मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। सारांश यह कि जहाँ गुसाईं तुलसीदास ने सम्पूर्ण हिन्दू-समाज को 'राममय' कर दिया, सूर ने गो, गोकुल और गोपियों को श्रीकृष्णमय बनाया वहाँ मीराँ ने व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय में आध्यात्मिक प्रेम की लौ जलाई।

## ४

जीव और ब्रह्म का सम्बंध भारतीय दार्शनिक चिन्तन की एक प्रमुख समस्या रही है। उपनिषद् काल के ऋषियों ने इस सम्बंध में बड़ा गम्भीर चिन्तन और मनन किया था और अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वस्तुतः परमात्मा और जीवात्मा एक ही हैं उनमें कोई अंतर नहीं। इसी विचार-धारा का तार्किक विकास करते हुए जगद्गुरु शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन करके यह मत स्थिर किया था कि वास्तव में जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं—'गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।'—और यह जो

१ या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौं निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं।
रसखान कहै इन आँखिन तें ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



प्रकट और प्रत्यक्ष भिन्नता दिखलाई पड़ती है, वह माया के कारण है। माया के आवरण से आच्छादित होकर जीव ब्रह्म से विलग हो जाता है। माया के इस आवरण ने निराकार को साकार, निर्गुण को सगुण, असीम को ससीम और अनंत को सांत बना दिया है। जो ज्ञानी हैं, जिन्हें निर्गुण और निराकार असीम और अनंत का आकर्षण विशेष है, वे इस माया के आवरण को स्वीकार करना नहीं चाहते, इसे वे भ्रांति मानते हैं, अज्ञान समझते हैं। स्वप्न में अनुभव किए गए सुख और दुःख जैसे असत्य हैं, यह माया जगत भी ठीक वैसा ही है। इसीलिए ज्ञानी पुरुष इस माया के आच्छादन को भेद कर ब्रह्म में विलीन हो जाना चाहते हैं। परन्तु जो ज्ञानी नहीं हैं, जिन्हें निर्गुण और निराकार असीम और अनंत के प्रति विशेष आकर्षण नहीं हैं, वरन् इस सगुण और साकार प्राणी के प्रति जिनमें मोह और ममता है वे इस माया के आवरण को सत्य मानकर उसे स्वीकार करते हैं; वे ब्रह्म में विलीन होना नहीं चाहते, ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त करना ही उनका चरम उद्देश्य होता है। भागवत पुराण में इस आवरण-विरहित ब्रह्म को कवित्व की भाषा में पुरुष की और माया के आवरण में आच्छादित जीव को लज्जा के आवरण में रहने वाली नारी की संज्ञा दी गई है। ब्रह्म पुरुष है, जीव नारी और इसी आधार पर माधुर्यभाव की भक्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।

हिन्दी साहित्य-संसार में मीराँबाई माधुर्य-भाव की भक्ति की प्रतीक हैं। मीराँ को अपने नारीत्व का पूर्ण ज्ञान है, अपने लज्जा के आवरण के प्रति मोह है। उस आवरण-विरहित ब्रह्म की श्रेष्ठता स्वीकार करती हुई भी वे अपना आवरण छोड़ना नहीं चाहतीं। भागवत की प्रसिद्ध चीर-हरण-लीला का वर्णन करती हुई वे कहती हैं :—

झट दो मेरो चीर, मोरारी, मोरारी रे झट दो मेरो चीर।
ले मेरो चीर कदम चढ़ बैठो, मैं जल बीच उघाड़ी।
ऊभी राधा अरज करत है, हो चीर दीवो गिरधारी।
प्रभु तोरे पाँव परूँगी।
जे राधा तेरो चीर चहत हो, जल से हो जा न्यारी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जल से न्यारी काना कभुवे न होवुंगी, तुम हो पुरुष हम नारी।
लाज मोहुँ आवत भारी ॥
तुम तो कुँवर नंदलाल कहावो, में ब्रजभान दुलारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी।
चरन पर जाउँ बलिहारी ॥

[ बृहत् काव्य दोहन भाग ७ मीरां के पद नं०११२ ]

आवरण-विरहित ब्रह्म-रूपी पुरुष मुरारी की जीत हुई और माया के आवरण से आच्छादित जीव-रूपी नारी राधा ने अपना पराजय स्वीकार किया, परंतु उस जीव का भी कितना अटल निश्चय है "जल से न्यारी काना कभुवे न होवुंगी तुम हो पुरुष हम नारी;लाज मोहुँ आवत भारी।" नारीत्व की मर्यादा का कितना सुंदर चित्रण है।

यही नारीत्व की मर्यादा मीराँ की भक्ति और कवित्व का मूल रहस्य है। जीव की नारी-भावना को लेकर और भी कितने कवियों ने माधुर्य-भाव की भक्ति-धारा प्रवाहित की है, परन्तु उन कवियों ने नारीत्व की मर्यादा का ध्यान नहीं रखा, नारी जीवन की पवित्रता और महानता का चित्र उपस्थित नहीं किया। उन्होंने केवल उच्छृंखल नारी-प्रकृति का ही चित्र उपस्थित किया। उन कवियों · लगभग सभी के सभी पुरुष थे, इसी कारण सम्भवत: उन्होंने नारी-जीवन की पवित्र मर्यादा का निर्वाह नहीं किया; परन्तु उनमें जो स्त्री कवि भी हुई हैं, उन्होंने भी परम्परा के वशीभूत होकर नारी-प्रकृति की पवित्रता और मर्यादा का ध्यान नहीं रखा। मीराँबाई ने उस परम्परा की अवहेलना कर नारी-जीवन की जो एक मर्यादा स्थापित की, वह भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। वृंदावन में गौएँ चरानेवाले मुरलीधर श्याम से वे प्रार्थना करती हैं :

मने चाकर राखो जी, मने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठ दरसण पासूं।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



चाकरी में दरसण पाऊँ,सुमिरण पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागीरी पाऊँ,तीनों बातां सरसी ॥
मोर मुकट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला ।
बिन्द्रावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ॥
हरे हरे नित बन्न बनाऊँ,बिचबिच राखूं क्यारी ।
सांवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुम्भी सारी ॥
जोगी आया जोग करण कूं,तप करणे संन्यासी ।
हरी भजन कूं साधू आया,बिन्द्रावन के बासी ॥
मीराँ के प्रभु गहिर गँभीरा सदा रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसण दैहैं,प्रेम नदी के तीरा ॥

[ मीराँबाई की पदावली पद सं० १५४ पृ० ७४-७५ ]

नारी ने पुरुष से चाकरी मांगते हुए उसके उद्यानमें मालिन बनने की प्रार्थना की। इसमें उसको कितने ही लाभ थे। अपने प्रियतम की प्रिय वस्तु को सँभालने और सजाने का रुचिर कार्य, फिर प्रातःकाल फूल अर्पित करते समय स्वामी का दर्शन, अवकाश के समय उद्यान के हरे-भरे कुजों में घूम-घूम कर प्रियतम की लीलाओं का सुमधुर गान, उनके लिये नई-नई क्यारियां सजाना,नए-नए फूल खिलाना और अंत में कुसुम्भी सारी पहन कर सांवलिया का दर्शन पाना—कितने अलभ्य लाभ हैं। कुसुम्भी सारी पहन कर 'सांवलिया' के दर्शन पाने की लालसा अपने प्रियतम पुरुष को आकर्षित करने के लिये नहीं है,वह तो केवल अपने संतोष के लिए है,अपनी सहज नारी प्रकृति की तृप्ति के लिए है। बंगाल के कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसी सहज 'नारी-प्रकृति का चित्रण करते हुए अपने एक गीत में लिखा है :—

"ओ मां ? आज राजकुमार हमारे द्वार पर से ही निकलने वाले हैं, इस प्रातःकाल में अपना नित्य का आवश्यक कार्य कैसे कर सकती हूँ। मुझे मेरा केश बांधना सिखलाओ, आज मैं कौन-सा वस्त्र धारण करूँ, यह बतलाओ।

मां ! मेरी ओर आश्चर्य-चकित होकर क्या देख रही हो ?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वे राजकुमार मेरे वातायन की ओर एक बार भी दृष्टिपात न करेंगे; वे निमिष मात्र में ही मेरे दृष्टि-पथ से दूर चले जाएँगे, केवल वीणा की निरंतर क्षीण होती हुई स्वर-धारा ही बहुत दूर से सिसकती हुई मेरे पास तक आ सकेगी।

परन्तु राजकुमार मेरे ही द्वार पर से जाएँगे और मैं उस समय अपने सुंदरतम परिधान में सुसज्जित रहूँगी।"[1]

मीराँ ने इसी सहज नारी-प्रकृति का जो भावमय चित्रण किया है वह कितना सरल है फिर भी कितना मधुर। नारी का पुरुष के प्रति जो एक स्वाभाविक आकर्षण है वह केवल एक आकर्षण मात्र है, एक कुतूहल है जिसमें किसी वासना का लेश नहीं, कोई कामना नहीं, जो स्वच्छंद होने पर भी पवित्र है। इसी स्वच्छंद और पवित्र नारी-भावना से मीराँ अपने गिरधर नागर का दर्शन करना चाहती हैं। फिर यह बाग लगाने की चाकरी मीराँ जैसी नारी को ही शोभा देता है। जो असंख्य अनगिनत नारियों का एक ही पुरुष है, जिसकी श्रद्धा और सेवा के लिए लक्षावधि नारियाँ अपनी भिन्न-भिन्न भावनाओं से प्रस्तुत हैं, वहाँ यह प्रेमपूर्ण भावप्रवण चाकरी कितनी अद्भुत और अपूर्व है। मीराँ ने ही पहले-पहल इस प्रेमपूर्ण चाकरी की कल्पना की थी और उनके साढ़े तीन सौ वर्षों बाद बंगाल के कवीन्द्र रवीन्द्र ने सम्भवतः उन्हीं से प्रभावित होकर इस चाकरी को वरण किया था। वे लिखते हैं :

1. O mother, the young Prince is to pass by our door —how can I attend to my work this morning ? Show me how to braid up my hair; tell me what garment to put on

Why do you look at me amazed, Mother ?

I know well he will not glance up once at my windows; I know he will pass out of my sight in the twinkling of an eye; cnly the vanishing strain of the flute will come sobbing to me from a far.

But the young Prince will pass by our door, and I will put on my best for the moment.

( Gardener VII Song. )

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सेवक—मेरी राजरानी ! अपने सेवक पर दया करो।

राजरानी—सभा विसर्जित हो गई और मेरे सभी सेवक चले गये। तुम इतनी देर में क्यों आए ?

सेवक—जब आप सभी से छुट्टी पा जाती हैं, तभी तो मेरी सेवा का समय होता है। मैं यह जानना चाहता कि आपके अंतिम सेवक के लिए कौनसा कार्य बच गया है।

राजरानी—जब इतनी देर हो गई तब तुम किस कार्य की सम्भावना करते हो ?

सेवक—मैं अपने अन्य कार्य छोड़ दूँगा। मैं अपना कृपाण और ढाल धूल में फेंकता हूँ। मुझे दूर राजदरबारों में न भेजिये, मुझे किसी नवीन अभियान पर जाने की आज्ञा न दीजिये, वरन् मुझे अपने पुष्पोद्यान का माली बनाइये।

राजरानी—उद्यान में तुम कौनसा कार्य करोगे ?

सेवक—आपके अवकाश समय की सेवाएँ। आप प्रातःकाल जिस दूर्वादल के कोमल पथ पर पद-संचार करती हैं मैं उसे हरा-भरा रखूंगा, जहाँ आपके कोमल श्री चरणों से दलित होने की कामना वाले पुष्प आपके चरणों का विनययुक्त स्वागत करेंगे।[२]

रवीन्द्र अपनी अधिष्ठात्री देवी के माली होना चाहते हैं और मीराँ अपने गिरधर नागर की मालिन। कला, संगीत और नाटकीय गुणों में रवीन्द्र का यह गीत अद्वितीय है परन्तु भावों की कोमलता और सहज मधुरता में मीराँ के

2. Servant—Have mercy upon your servant, my queen !

Queen—The assembly is over and my servants are all gone. Why do you come at this late hour ?

Servant—When you have finished with others, that is my time. I come to ask what remains for your last servant to do.

Queen—What can you expect when it is too late ?

Servant—I will give up my other work, I throw my swords and lances in the dust Do not send me to distant courts, do

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



इस पद की कोई तुलना ही नहीं है। स्वच्छंद और पवित्र नारी-प्रकृति के उल्लास का यह मधुर संगीत हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

जीवात्मा को नारी का रूपक मीराँ के अतिरिक्त अन्य भक्तों और कवियों ने भी दिया है, परन्तु उन सभी ने जीवात्मा को नारी का रूपक मात्र माना, जीवात्मा को नारी स्वीकार नहीं किया। इसका कारण यह था कि नारी के प्रति उनमें श्रद्धा और विश्वास का अभाव था। जिस प्रकार गुसाईं तुलसीदास ने कामी पुरुषों की नारी के प्रति आसक्ति से भगवान् राम के प्रति अपनी आसक्ति की तुलना की है[1], परन्तु वे स्वयं कामी पुरुषों की नारी-आसक्ति को घृणा की दृष्टि से देखते थे, उसी प्रकार 'राम की बहुरिया' कबीर ने रूपक की दृष्टि से जीवात्मा को नारी का स्वरूप तो अवश्य दिया परन्तु स्वयं नारी के प्रति श्रद्धालु न होने के कारण उसे नारी नहीं मान सके। नारी-जीवन के मुख्य दो पक्ष हैं—एक है उसका निर्बल पक्ष, दूसरा सबल। नारी का अबलापन और असमर्थता, अशौच और अज्ञानता, बाह्य कोमलता और आवरण उसके निर्बल पक्ष हैं; दूसरी ओर उसका विश्वास और निश्चल प्रेम, करुणा और क्षमा, धैर्य और कष्ट-सहिष्णुता उसके सबल पक्ष हैं। कवि प्रसाद ने 'कामायनी' में श्रद्धा से भी कहलाया है :

यह आज समझ तो पाई हूँ, मैं दुर्बलता में नारी हूँ।
अवयव की सुंदर कोमलता, लेकर मैं सबसे हारी हूँ॥

यह नारी का निर्बल पक्ष है। दूसरी ओर वही श्रद्धा जब कहती है :

---

not bid me undertake new conquests- But make me the gardener of your flower garden.

Queen—What will your duties be ?

Servant—The service of your idle days. I will keep fresh the grassy path where you walk in the morning, where your foot will be greeted with praise at every step by flowers eager for death. ( Gardener The first song )

१ कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
त्यों रघुबीर निरन्तर प्रिय लागहिं मोहिं राम॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सर्वस्व समर्पण करने की विश्वास महातरु छाया में।
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों ममता जगती है माया में॥
इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है॥

तब वह नारी-जीवन के सबल पक्ष की ओर संकेत करती है। मध्यकालीन संत कवियों ने नारी-जीवन का केवल निर्बल पक्ष ही देखा था। देखिये कबीर का नारी के प्रति कैसा भाव है :

चलो चलो सबही कहैं, पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक औ कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥
नारी की झाईं पड़े, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग॥

इसी अश्रद्धा के कारण कबीर ने नारी की अज्ञानता, असमर्थता, अबलापन और उसके बाह्य आवरण को ही नारी का सर्वस्व मानकर जीवात्मा पर केवल उन्हीं का आरोप किया। नारी के आंतरिक गुण—उसकी लज्जा, करुणा, विश्वास और अटल प्रेम का आरोप करने का उन्हें ध्यान ही न रहा। अस्तु, जीवात्मा की अज्ञानता को लक्ष्य करके कबीर कहते हैं :

जागु पियारी अब का सोवै। रैन गई दिन काहे को खोवै॥
जिन जागा तिन मानिक पाया। तैं बौरी सब सोइ गँवाया॥
पिय तेरे चतुर, मूरख तू नारी। कबहुँ न पिय की सेज सँवारी॥

इसी प्रकार नारी की अशुचिता का आरोप करके वे जीवात्मा से कहलवाते हैं :

मेरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पांच तत्त की बनी चुनरिया, सोरह सै बंद लागे जिया।
यह चुनरी मेरे मैके ते आई, ससुरा में मनुआँ खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटा, ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहै कबीर दाग कब छुटि हैं, जब साहब अपनाय लिया॥

और नारी के अबलापन और असमर्थता का ध्यान रख कर वे कहते हैं :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मिलना कठिन है कैसे मिलौंगी प्रिय जाय।
समझि सोचि पग धरौं जतन से बार-बार डिग जाय॥
ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
लोक-लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय॥
नैहर-बास बसौं पीहर में, लाज तजी नहिं जाय।
अधर भूमि जहँ महल पिया का, हम पै चढ़यो न जाय॥ इत्यादि

परंतु मीराँ की नारीत्व पर श्रद्धा थी, विश्वास था। इसीलिए उन्होंने नारी की अज्ञानता, असमर्थता और अबलापन की ओर ध्यान न देकर नारी का अटल प्रेम और विश्वास, सहनशीलता और त्याग देखा और प्रियतम के विरह में लज्जा को तिलांजलि देकर पिया के ऊँचे महल की ओर जाने का प्रयत्न नहीं किया, अभिसार की प्रवृत्त नहीं दिखाई, वरन् अपनी निश्चल भक्ति, व्यथा सहने की क्षमता और त्याग से भगवान को ही अपने निकट खींचने का प्रयत्न किया। विरह की व्यथा से व्याकुल होकर वे गा उठती हैं:—

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायौ चैन॥
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठेमीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ काहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन॥
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण॥

इस कष्ट-सहिष्णुता में, इस व्यथा में कितना त्याग है, कितना आत्म-समर्पण है, वह भी मीराँ स्पष्ट रूप में कह देती हैं :

तुमरे कारण सब सुख छाड्या अब मोहिं क्यूं तरसावौ हो।
बिरह बिथा लागी उर अंतर, सो तुम आय बुझावौ हो॥
अब छोड़त नाहिं बनै प्रभू जी, हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावौ हो॥

विद्यापति तथा बंगाल के वैष्णव कवियों ने भी जीवात्मा को नारी का रूपक दिया, परंतु नारी जाति के प्रति उनकी भी श्रद्धा अधिक नहीं थी।



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



वैष्णवों के प्रतिनिधि कवि और आचार्य रूप गोस्वामी के सम्बंध में कहा जाता है कि उन्होंने मीराँ से मिलना केवल इसलिए अस्वीकार किया था कि वे नारी थीं। इसी कारण नारी का सहज सुंदर चित्रण करने में वे वैष्णव कवि भी असमर्थ रहे। यद्यपि कबीर आदि संतों की भांति नारी की अज्ञानता, अशौच और असमर्थता को ही उन्होंने नारी-जीवन का सर्वस्व नहीं माना, परंतु वे भी नायिका-भेद के लक्षण-ग्रन्थों में वर्णित मान, अभिसार, पूर्वानुराग और विरह तक ही रह गए, नारी जाति के सरल विश्वास, अटल प्रेम और अद्भुत सहनशीलता का चित्र प्रस्तुत नहीं किया। अस्तु, विद्यापति जहाँ नायिका-भेद की परम्परा का अनुसरण करते हुए कहते हैं :—

नंदक नंदन कदमक तरु तरे धिरे धिरे मुरली बजाउ।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोल पठाउ॥
सामरी तोरा लागि अनुछन बिकल मुरारि।
जमुनक तीर उपवन उदवेगल फिरि फिर ततहिं निहारि।
गोरस बेचन अबइत जाइत जनि जनि पुछे बनमारि॥

वहाँ मीराँ ने इस परम्परा की पूर्ण अवहेलना कर नारी जाति के सहज स्वाभाविक गुणों का ही चित्रण किया। अपने गिरधर के विरह में वे गा उठती हैं:—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ॥ टेक॥

गिरधर म्हांरो साँचो, देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके सँग खेलूं, ज्यूं ज्यूं वाहि रिझाऊँ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावै तितही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥

मध्ययुग में जहाँ संतों और वैष्णव कवियों को नारी के प्रति इतनी अश्रद्धा थी, वहाँ आधुनिक महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नारी जाति के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है। एक गीत में वे लिखते हैं :—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



"नारी ! तुम केवल भगवान् की ही अद्भुत कृति नहीं हो, वरन् मानवों की भी अद्भुत कृति हो; वे निरंतर अपने अंतरतम से तुम्हें सौन्दर्य की विभूति से भूषित करते रहते हैं।

कविगण स्वर्णिम कल्पना के धागों से तुम्हारे लिए एक जाल-सा बुनते रहते हैं; चित्रकार निरंतर तुम्हारे स्वरूप ( बाह्य सौन्दर्य ) को अमरत्व प्रदान करते रहते हैं।

तुम्हें विभूषित करने, आच्छादित करने, तुम्हें अत्यधिक अतुलनीय बनाने के लिए सागर मुक्ता देते हैं, खान सुवर्ण और वसंतोद्यान अपने पुष्प प्रदान करते हैं।

मानव-हृदय की वासना ने तुम्हारे यौवन को सदैव ऐश्वर्य प्रदान किया है।

तुम अर्द्ध नारी हो और अर्द्ध स्वप्न।"[1]

नारी आधी तो पंच तत्वों की बनी भौतिक मानवी है और आधी स्वप्न; इसीलिए इस नारी से अभिसार करने स्वयं भगवान् को आना पड़ता है। कबीर तथा वैष्णव कवियों ने अभिसार का सारा कार्य-भार नारी पर ही रखा था, परंतु रवीन्द्रनाथ को यह बात सह्य नहीं हुई। जो ईश्वर तथा मानव दोनों की ही प्रिय सृष्टि है, उसे अपने नारीत्व की मर्यादा और लज्जा की तिलांजलि देकर अभिसार के लिए ले जाना उसका अपमान करना है; इसीलिए स्वयं भगवान् ही इस नारी से अभिसार के लिए निकलते हैं। इतना ही नहीं, जब पुरुष

---

1. O Woman, you are not merely the handiwork of God, but also of men; these are ever endowing you with beauty from their hearts.

Poets are weaving for you a web with threads of golden imagery; painters are giving your form ever new immortality

The sea gives its pearls, the mines their gold, the summer gardens their flowers, to deck you, to cover you, to make you more precious.

The desire of men's heart has shed its glory over your youth. You are one-half woman and one-half dream.(Gardener LIX)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



ब्रह्म जीवात्मा नारी के प्रेम के आकर्षण से अभिसार के लिए उसके द्वार पर आ पहुँचता है, तब भी नारी-सुलभ लज्जा से वह अपना प्रेम छिपा ले जाती है:

"जब मेरी शैया-घर का दीप बुझ गया, मैं प्रत्यूषकालीन पक्षियों के साथ उठ बैठी।

मैं अपने बिखरे अलकों पर एक नूतन माला डाले अपनी खुली खिड़की पर बैठ गई।

प्रभात के स्वर्णिम नीहारिका में नवयुवक यात्री राजमार्ग से आया।

उसके गले में मोतियों की माला थी और बाल सूर्य की किरणें उसके मुकुट पर पड़ रही थीं। वह मेरे द्वार पर आकर रुक गया और उत्कंठित स्वर में मुझसे पूछा, वह (प्रेमिका) कहाँ है!

लज्जा के कारण मैं यह भी नहीं कह सकी कि वह मैं ही हूँ, यात्री, वह मैं ही हूँ।"[1]

मीराँ की नारी रवीन्द्रनाथ की नारी की भांति आधी स्वप्न नहीं है, वरन् वह सम्पूर्ण भौतिक नारी है; उसमें दुर्बलताएँ भी हैं और गुण भी। एक ओर तो वह नारीजनोचित भय से बादल देखकर ही डर जाती है:

बादल देख डरी हो स्याम मैं बादल देख डरी।

दूसरी ओर उन्हीं बादलों के गर्जन में उसे अपने हरि के आने की आवाज सुनाई पड़ती है:—

---

1. When the lamp went out by my bed I woke up with the early birds.

I sat at my open window with a fresh wreath on my loose hair.

The young traveller came along the road in the rosy mist of the morning.

A pearl chain was on his neck, and the sun's rays fell on his crown- He stopped before my door and asked me with an eager cry, "Where is she?"

For very shame I could not say, "She is I, young traveller, she is I" Gardener

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढ़े मग जोऊँ मोरी सजनी, कब आवै महाराज॥
दादर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै, दामिणि छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इंद्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी वेग मिलो महाराज॥

[ मीराँबाई की पदावली पद सं० १४१ पृ० ६९-७० ]

नारी-सुलभ लज्जा से मीराँ की नारी प्रायः स्वयं अभिसार के लिए नहीं निकलती, परंतु उसके लिए उसके प्रियतम भी अभिसार के लिए नहीं निकलते। मीराँ उनकी 'जनम जनम की दासी' हैं, दासी के लिए उनका अभिसार उचित भी नहीं है। मीराँ ने नारी को वास्तविक नारी के रूप में देखा और उसके प्रेम और भक्ति का जितना यथार्थ और सुन्दर चित्रण उन्होंने किया वैसा साहित्य में अन्यत्र कहीं दुर्लभ है।

मीराँ के पदों में सहज और स्वच्छंद नारी-प्रकृति का प्रेम और विरह अपूर्व है। पुरुष और नारी के बीच जो एक पवित्र और मर्यादापूर्ण प्रेम का बंधन है, वही प्रेम का बंधन मीराँ ने अपने गिरधर नागर के साथ स्थापित किया। इस सरल नारी-हृदय के प्रेम और विरह में जो सहज पवित्रता है, जो सरल गम्भीरता है, जो मुग्धकर सौन्दर्य है, वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। सरल-हृदया नारी को अपने प्रभु से मिलने की उत्कट इच्छा है, उनके विरह में वह अत्यन्त व्याकुल है, परंतु इस उत्कट अभिलाषा के रहते हुए भी वह सरला है, अनजान है, उसे पता नहीं कि कब और कैसे प्रियतम प्रभु से मिलना होता है। इसीलिए उसके साजन आकर चले भी जाते हैं और वह सोती ही रहती है :

मैं जाण्यो नहीं प्रभु को मिलण कैसे होइ री॥ टेक॥
आए मेरे सजना, फिरि गए अँगना, मैं अभागण रही सोइ री॥
फारूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँगी वैरागण होइ री।
चुरियाँ फोरूँ माँग बखेरूँ कजरो मैं डारूँ धोइ री॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



निसबासर मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल मोइ री।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मति कोइ री॥

[ मीराँ० पदा० पद० सं० ४८ ]

परन्तु इस सरलता से उसकी व्यथा कम नहीं होती, बढ़ ही जाती है। उसका विरह-दुःख कितना अधिक है, उसमें कितनी व्यथा है, कितनी ज्वाला है, उसका वर्णन मीराँ ने बहुत ही मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है। सरल हृदय से निकली हुई मीराँ की स्पष्ट और सहज व्यथा में कितनी पवित्रता है, कितना गाम्भीर्य है। नारी-प्रकृति का इतना स्वच्छंद, फिर भी इतना पवित्र और मर्यादापूर्ण उल्लास किसी भी साहित्य की अमूल्य निधि है और हिन्दी साहित्य को मीराँ के इन पदों पर समुचित गर्व होना चाहिए।

## ५

गुसाईं तुलसीदास ने भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए एक अद्भुत तर्क उपस्थित किया है। मानस के उत्तरकांड में गरुड़ के इस प्रश्न पर कि 'ग्यानहिं भगतिहिं अंतर केता' काकभुशुंडि ने उत्तर दिया :

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा।
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंग बर॥
ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी जो बिषय बस, बिमुख जो पद रघुबीर॥
सोउ मुनि ग्याननिधान, मृगनयनी बिधुमुख निरखि।
बिकल होहिं हरिजान, नारि बिष्नु माया प्रगट॥
इहाँ न पच्छपात कछु राखौं। बेद पुरान संत मत भाखौं।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु प्रभु दोऊ। नारि वर्ग जानहिं सब कोऊ।
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्त्तकी बिचारी॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



ज्ञान पुरुष है इस कारण वह माया नारी के प्रति आकृष्ट होता है, भक्ति नारी है इसलिए वह माया नारी के प्रति आकृष्ट नहीं होती। इसी कारण भक्ति ज्ञान से सरल और श्रेष्ठ है। गुसाईं जी का तर्क चाहे कोई माने या न माने, परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि ज्ञान पुरुष है और भक्ति नारी। पुरुष को अपनी बुद्धि का बल होता है, स्त्री को हृदय का; पुरुष किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, परंतु नारी को एक अवलम्ब अवश्य चाहिए। इसीलिए जहाँ ज्ञान रूपी पुरुष अपनी बुद्धि के अभिमान में कह उठता है :—

अहं निर्विकल्पं निराकारूपं विभुर्व्याप्त सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि ।
सदा में समत्वं न मुक्तिर्नबंधः चिदानंदरूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥

वहाँ भगवान पर अवलम्बिता भक्ति नारी गा उठती है :—

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाने नहीं बिसरूँ दिन राती ।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है जानत मेरी छाती ।

इस भक्ति नारी का जितना सफल चित्रण मीराँ ने किया है उतना और कोई भक्त कवि नहीं कर सका। गुसाईं तुलसीदास ने भक्ति को नारी तो अवश्य माना परन्तु नारी-भाव की भक्ति-भावना वे न कर सके। उनकी भक्ति भावना दास्य भाव की थी। 'मानस' में वे स्पष्ट लिखते हैं :—

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।'

सेवक भी अपने स्वामी पर अवलम्बित रहता है, परन्तु वह अवलम्बन ठीक उसी प्रकार का नहीं है जैसा नारी का। सेवक को अपनी सेवा का बल है और बल है अपने स्वामी की दया और करुणा का; नारी को अपने हृदय का बल है और बल है अपनी व्यथा सहने की क्षमता और त्याग का। पहले में दीनता का भाव भरा है, दूसरे में क्षमता है, त्याग और है महानता। नारद भक्ति सूत्र में लिखा है कि भगवान् का अभिमान से द्वेष भाव है और दैन्य से प्रिय भाव।[1] सम्भवतः इसीलिए भक्तों ने अपने विनय के पदों में अति दैन्य भाव प्रकट किया है। अस्तु, जब गुसाईं तुलसीदास अपने भगवान से कहते हैं :—

१. ईश्वरस्याप्यभिमान द्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च । नारद भक्ति सूत्र ॥२७॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



माधव जू मो सम मंद न कोऊ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ।
× ×
मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतितपावन प्रभु यह भरोस जिय आवै॥

तब अपनी दीनता, पाप और असहाय अवस्था की दुहाई देकर गरीबनिवाज और भक्तवत्सल भगवान् से दया और करुणा की भिक्षा माँगना ही उनका एकमात्र उद्देश्य है। सूरदास ने अपने विनय के पदों में अपने को अत्यंत तुच्छ, हीन और घृणित प्राणी के रूप में चित्रित किया है :—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सबके अंतरजामी॥
जो तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नमकहरामी।
भरि भरि द्रोह विषै कौं धावत, जैसे सूकर ग्रामी॥
× ×
पापी परम अधम अपराधी, सब पतितन में नामी।
सूरदास प्रभु अधम उधारन, सुनिए श्रीपति स्वामी॥

परन्तु यह दीन भाव भगवान के कृपापात्र एक भक्त को शोभा नहीं देता। भगवान को अभिमान से द्वेष है, आत्माभिमान से नहीं। मीराँ ने अभिमान का त्याग अवश्य कर दिया था, क्योंकि अभिमान और अहंकार के रहते आत्मसमर्पण सम्भव ही नहीं है; परन्तु आत्माभिमान का त्याग नहीं किया। इसीलिए उन्होंने अपने को अत्यंत हीन और तुच्छ नहीं समझा। उनकी भक्ति भावना में दीनता और असमर्थता का लेश भी नहीं है। वह भगवान सर्वशक्तिमान है, श्रेष्ठ है, सब चराचर का स्वामी है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, परन्तु भक्त का भी एक स्वतंत्र अस्तित्व है, उसकी भी एक मर्यादा है। भक्त भगवान् पर अवलम्बित अवश्य है, परन्तु वह अवलम्बन उसी प्रकार का है जैसे लता तरु पर अवलम्बित है। मीराँ की भक्ति-भावना इसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



प्रकार की थी। आत्माभिमानिनी मीराँ अपने हरि की उपेक्षा नहीं सह सकतीं। वे कह उठती हैं :—

माई म्हारी हरि न बूझी बात।
पिंड मारूँ प्राण पापी निकस क्यूँ नहिं जात॥

और अपने अविचल प्रेम तथा भक्ति के विपरीत उन्हें जब भगवान् के दर्शन नहीं मिलते तब उपालम्भ-स्वरूप वे कह उठती हैं :—

जाओ हरि निरमोहड़ा रे जाणी थाँरी प्रीत।
लगन लगी तब और बात ही अब कछु अवली रीत॥

मीराँ ने भक्ति की, प्रेम किया, प्रेम में आत्मसमर्पण भी कर दिया, परन्तु अपने को तुच्छ और हीन नहीं बनाया।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि जब सूरदास पहले पहल महाप्रभु वल्लभाचार्य की सेवा में उपस्थित हुए और महाप्रभु की आज्ञा से 'हौं हरि सब पतितन को नायक' तथा 'प्रभु मैं सब पतितन को टीको' दो पद सम्पूर्ण करके सुनाए तब महाप्रभु ने कहा था 'जो सूर है कें ऐसो घिघियात काहे को है।' यह बात सूरदास के हृदय में ऐसी चुभ गई कि उसी दिन से उन्होंने 'घिघियाना' छोड़ दिया। भक्त का काम घिघियाना नहीं है, भक्ति करना है, और मीराँ ने भक्ति की थी। इसलिए उन्होंने अपने को दीन, हीन और छोटा प्रमाणित करने का प्रयत्न नहीं किया, अपनी व्यथा और सहनशीलता के बल पर अपने हृदय-धन को प्राप्त करने की उनकी चेष्टा थी उनकी भक्ति भावना में एक उल्लास था, वह उल्लास जो सीधे हृदय से निकला था, जिस पर बुद्धि का कोई नियंत्रण नहीं, लोक-लज्जा का कोई भय नहीं; वह उल्लास जो स्वच्छंद होकर भी पवित्र था। वह भक्ति का उल्लास ही था, जिसमें मीराँ गा उठती हैं :—

पग घुँघरू बांध मीराँ नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की, आपहि हो गइ दासी रे।
लोग कहैं मीराँ भई बावरी, न्यात कहैं कुल नासी रे॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



विष का प्याला राणा जी भेज्यो पीवत मीराँ हासी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अबिनासी रे॥

वह ऐसा उल्लास था जो पावस-पयस्विनी की भाँति सब कुछ बहा ले जाने में समर्थ था, जिसमें बदनामी भी मीठी[1] लगती थी। कवीन्द्र रवीन्द्र ने जिस भक्ति की उपेक्षा करते हुए लिखा है :—

ये भक्ति तोमारे लये धैर्य नाहिं माने,
मुहूर्त्ते विह्वल हय नृत्य-गीत गाने,
भावोन्माद मत्तताय, सेइ ज्ञानहारा
उद्भ्रांत उच्छलफेन भक्ति-मद-धारा
नाहि चाहि नाथ। [ संत कबीर-भूमिका पृ० १९५ से उद्धृत ]

मीराँ ने उसी 'ज्ञानहारा' भक्ति को स्वीकार किया था। जो भक्ति ज्ञान और कर्म से समन्वित है, वह विशुद्ध भक्ति नहीं है; वह ज्ञानी पुरुष के लिए उपयुक्त हो सकती है, परंतु भक्ति-प्राण नारी के लिये नहीं। मीराँ नारी थीं, भक्ति की प्रतीक थीं, इसी कारण उन्होंने इस 'ज्ञानहारा उद्भ्रांत उच्छलफेन भक्ति-पद-धारा' को अपनाया। मीराँ की भक्ति-भावना की यही महत्ता है।

---

१ राणा जी मुझे यह बदनामी लगे मीठी॥ टेक॥
कोई निन्दो कोई विन्द चो, मैं लूंगी चाल अपूठी॥
[ मीराँ० की पदा० पद सं० ३६ पृ० १९ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# तीसरा अध्याय

## मीराँ का काव्य-विषय—भक्ति

भक्ति-युग के सभी भक्त कवियों का एक ही काव्य-विषय था भक्ति, परंतु एक ही विषय होते हुए भी उसमें संकीर्णता और सीमितता का लेश भी नहीं है। रीतिकालीन कवियों का भी एक ही काव्य-विषय था शृंगार, परंतु वह कितना सीमित और संकीर्ण है। बात यह थी कि भक्त कवियों की काव्य-परम्परा सजीव थी, इसी कारण एक ही विषय भक्ति को अपनी रुचि-वैचित्र्य, चिन्तन और भावना के कारण उन्होंने विविध प्रकार से अनुभव कर अगणित काव्य रूपों और शैलियों में प्रकाशित किया—किसी ने सबदी, साखी और रमैनी लिखी, किसी ने महाकाव्य और खंडकाव्य की रचना की, किसी ने पदों में रस की धारा उमड़ाई और किसी ने जनता में प्रचलित होली, धमार और चाँचर की धूम मचा दी। रीतिकालीन कवियों की काव्य-परम्परा सजीव न थी, केवल प्राचीन संस्कृत साहित्य-परम्परा का अंधानुकरण मात्र था, इसीलिए उसमें काव्य-रूप और शैली की विविधता नहीं मिलती, विषय की व्यापकता नहीं मिलती, मिलती है केवल एकरसता और एक ही कला का निर्जीव प्रदर्शन।

भक्ति-काव्य की व्यापकता दिखाने के पहले भक्ति की स्पष्ट व्याख्या कर लेना अत्यंत आवश्यक है। किसी भी पदार्थ से गाढ़ा प्रेम रखना भक्ति कहलाता है। भक्ति रसामृत-सिन्धु के अनुसार "हमारे इष्ट पदार्थों की ओर जो हमारा आंतरिक प्रेम रहता है, उसी उत्साहित प्रेम को भक्ति कहते हैं[१]।" पत्नी का अपने पति के प्रति जो प्रगाढ़ आंतरिक प्रेम है वही उसकी पति-भक्ति है। परंतु किसी भी इष्ट पदार्थ के प्रेम को भक्ति नहीं कहते, केवल ईश्वर के प्रति

१ भक्ति योग [ मूल लेखक अश्विनीकुमार दत्त। हिन्दी अनुवादित पृ० १ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



प्रगाढ़ प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। इसीलिए शांडिल्य सूत्र में लिखा है "ईश्वर के प्रति अपूर्व अनुराग को भक्ति कहते हैं।"[1] ईश्वर के अतिरिक्त अन्य इष्ट पदार्थों से जो प्रगाढ़ प्रेम होता है वह सामान्य भक्ति नहीं विशेष भक्ति है, जैसे देश-भक्ति और स्वामी-भक्ति इत्यादि; भक्ति तो केवल एक परमात्मा के ही प्रति होती है।

भक्ति के आश्रय, आलम्बन और भावना ये तीन प्रधान अंग हैं। भक्ति आश्रय है, भगवान आलम्बन और इन दोनों के बीच जो एक भावना का सम्बंध है वही भक्ति है। यह भावना का सम्बंध कई प्रकार का हो सकता है। सामाजिक जीवन में मानव-मानव के बीच जितने भी दृढ़ भावना-सम्बंध हो सकते हैं वे सभी सम्बंध भक्त और भगवान के बीच सम्भव हैं। अस्तु, आश्रय तथा आलम्बन के प्रकृति-भेद से भक्ति भी कई प्रकार की हो सकती है। भगवान के प्रकृति-भेद से उसकी उपासना-पद्धति में भेद आ जाता है। ब्रह्म त्रिगुणात्मक है; सत्त्व गुण से भगवान के दया, दाक्षिण्य आदि की उत्पत्ति होती है और ऐसे सत्वगुण-प्रधान ब्रह्म की उपासना उसी के अनुरूप दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर आदि भावनाओं द्वारा होती है। रजोगुण से भगवान की शक्ति उत्पन्न होती है और ऐसे रजोगुण-प्रधान ब्रह्म की उपासना युद्ध द्वारा ही हो सकती है। असुरों और अत्याचारियों का नाश ही रजोगुण प्रधान ब्रह्म की भक्ति और उपासना है। तमोगुण से भगवान शरीर धारण कर इच्छानुसार चतुर्भुज आदि रूप रखते हैं; ऐसे तमोगुण-प्रधान ब्रह्म की उपासना पुष्प, माला, चंदन आदि उपहारों से की जाती है। सर्वसाधारण ऐसी ही भक्ति और उपासना किया करते हैं। इसी प्रकार आश्रय के प्रकृति-भेद से भी भक्ति-भावना में भिन्नता आती है। सत्वगुण-प्रधान भक्त नवधा भक्ति करता है जैसा कि रामचरित-मानस में भगवान राम ने शबरी को उपदेश किया था। नारद, हनुमान, ध्रुव और प्रह्लाद आदि पौराणिक भक्त तथा सूर, तुलसी, मीराँ चैतन्य आदि भक्तगण इसी प्रकार की भक्ति

१ सा (भक्ति) परानुरक्तिरीश्वरे।

२ देखिए आनंद मठ (बंकिमचंद्र चट्टर्जी का उपन्यास)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



करते थे। रजोगुण-प्रधान भक्त भगवान से स्पर्द्धा की भावना रखता है और तामसी प्रकृति का भक्त भगवान से वैर-भावना का ही सम्बन्ध स्थापित करता है। रामचरित-मानस का रावण इसी कोटि का भक्त था। वैर भी हृदय का एक सम्बन्ध है और स्नेह, प्रेम की ही भाँति अत्यन्त तीव्र भी है। इस प्रकार भक्ति विविध प्रकार की हो सकती है, परन्तु जिस भक्ति को साहित्य और काव्य में भक्ति की संज्ञा प्रदान की गई है वह केवल सत्वगुण प्रधान भक्त द्वारा सत्वगुण-प्रधान भगवान की भक्ति है।

भक्ति-काव्य की व्यापकता का मुख्य कारण यह था कि भक्त कवियों ने केवल अपनी भक्ति-भावना का ही निरूपण और अभिव्यंजन नहीं किया, वरन् उन्होंने भगवान् के स्वरूप का, उनके विशिष्ट गुणों का भी निरूपण किया, उनकी दयालुता और भक्तवत्सलता के भी गीत गाए, भक्तों की महत्ता, कष्ट-सहिष्णुता और अटल निष्ठा की प्रशंसा भी की। इतना ही नहीं निर्गुणवादी संत कवियों ने सतगुरु को भी भक्ति का एक अंग माना और उनकी प्रशंसा भी जी खोल कर की। बात यह थी कि उस 'अकल, अनीह, अभेद' भगवान का ज्ञान बिना गुरु के हो ही नहीं सकता और जब तक भगवान का ज्ञान नहीं होता, उसका साक्षात्कार नहीं होता, तब तक सच्ची भक्ति-भावना का उदय सम्भव ही नहीं है। इसीलिये तो कबीर ने गुरु का महत्व गोविन्द के समान अथवा कुछ अधिक ही स्थिर किया है[1]; और भक्तमाल के रचयिता नाभादास ने भक्त, भक्ति, भगवंत और गुरु को एक ही शरीर के चार नाम माने है[2]। इस प्रकार भक्त कवियों ने भगवान का वर्णन किया—उनकी नरलीला, उनकी सर्वव्यापकता, उनकी भक्तवत्सलता के गीत गाए; भक्तों का गुणगान किया; गुरु की वंदना की और अपनी भक्ति-भावना की सरस धारा-सी उमड़ा दी। साथ ही कुछ भक्त-कवियों ने इस भवसागर के अपने कुछ अनुभव भी बताए और लौकिक जीवों की कल्याण-कामना से प्रेरित हो उन्हें संसार की अनित्यता और उससे पार

१—गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाँय, बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय।
२—भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर्नाम वपु एक।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जाने के लिए चेतावनी और उपदेश भी दिए। इस प्रकार एक भावना, एक उल्लास मात्र को भक्त कवियों ने कितना व्यापक और सजीव बना दिया। मीराँ ने भी अपनी रुचि और भावना के अनुरूप भगवान का चित्रण किया, भक्ति की धारा उमड़ाई, भवसागर के अपने अनुभव सुनाए और उपदेश तथा चेतावनी के अंग वर्णित किए।

## १

**मीराँ के भगवान**—मीराँ के भगवान उनके प्रियतम गिरधर नागर हैं जो कितने ही भिन्न-भिन्न रूपों में हमारे सामने आते हैं। उनका पहला स्वरूप निर्गुण ब्रह्म का है जो कबीर, नानक आदि संत कवियों के निर्गुण निराकार ब्रह्म के बहुत निकट जान पड़ता है। वह दूर ऊँचे महल का रहने वाला है।[1] वह गगन मंडल में सेज बिछाकर सोने वाला प्रियतम है।[2] उसके पास पहुँचने का रास्ता ऊँचा-नीचा और रपटीला है जिस पर पाँव भी नहीं ठहरते, जहाँ कोस-कोस पर पहरा बैठा हुआ है और पग-पग पर चोर-लुटेरों का भय है[3]। परन्तु वह दूर ही नहीं है अत्यन्त पास भी है, स्वयं मीराँ के हृदय में निवास करने वाला है, जहाँ से वह कहीं आता जाता नहीं है; वह जीव-नारियों के साथ झुरमुट खेलने वाला प्रियतम है[4]। मीराँ अपने

१ मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी।

२ गगन मण्डल में सेज पिया की केहि विधि मिलणा होइ।

३ गली तो चारों बन्द हुई मैं हरि से मिलूँ कैसे जाइ।
ऊँची नीची राह रपटीली पाँव नहीं ठहराइ॥
सोच-सोच पग धरूँ जतन से बार-बार डिग जाइ।
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ़या न जाय।
पिया दूर पन्थ म्हाँरो झीणों सुरत झकोला खाइ।
कोस-कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।
है विधना कैसी रच दीनी दूर बस्यो म्हाँरो गाम। [मीराँ की पद०० पद सं० १९३]

४ सखीरी मैं तो गिरधर के रङ्ग राती।
पचरङ्ग मेरा चोला रङ्ग दे मैं झुरमुट खेलन जाती।
झुरमुट में मेरा साईं मिलेगा खोल अडम्बर गाती।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



'साहिब' को नैनों में बसाना चाहती है जहाँ 'त्रिकुटी' झरोके से वे झाँकी लगाएँगी और 'सुन्न' महल में सुख की सेज बिछाएँगी। वे एक अद्भुत रहस्यमय भगवान है जिनका कोई रंग-रूप नहीं।

मीराँ के गिरधर नागर का एक दूसरा स्वरूप योगी का है। उस योगी की खोज में मीराँ ने भी योग ले लिया है। उसे न दिन में भूख लगती है न रात में नींद आती है; वह घर-घर अलख जगाती फिरती है। उस जोगी से प्रीति करने में दुःख-ही-दुःख है[२] फिर भी उससे प्रीति करनी ही पड़ती है क्योंकि वह अत्यन्त सुंदर है और बहुत ही मीठे शब्द बोलता है। वह

---

जिनके पिय परदेस बसत हैं लिखि-लिखि भेजैं पाती।
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूँ न आती जाती॥ [ मीराँबाई की शब्दावली पृ० १० ]

अथवा रमैया मैं तो थारे रंग राती॥
ओराँ के पिया परदेस बसत हैं लिखि लिखि भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हिरदै बसत है सूँज करूँ दिन राती॥
चूवा चोला पहिर सखोरी, मैं झुरमुट रमवा जाती।
झुरमुट में मोहि मोहन मिलियाँ, खोल मिलूँ गल बाटी॥
[ मीराँबाई की शब्दावली पृ० २० ]

१. नैनन बनज बसाऊँरी जो मैं साहिब पाऊँ।
इन नैनन मेरा साहिब बसता डरती पलक न लाऊँ री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ री।

२ जोगिया से प्रीत किया दुख होइ।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी जोगी मित न कोइ।
रात दिवस कल नाहिं परत है तुम मिलियाँ बिनि मोइ।
ऐसो सूरत या जग माहीं, फेरि न देखी सोइ।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आणंद होइ॥ [ मीरा पदा० पद सं० ५७ ]

३. जावा दे जावा दे जोगी किसका मीत।
सदा उदास रहे मोरी सजनी निपट अटपटी रीत॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



योगी आसन मार कर अडिग होकर बैठा है जो न आते दिखाई पड़ता है न जाते, वह किसी का भी मित्र नहीं। वह विचित्र योगी अधबीच ही में छोड़ कर चला गया, उसकी प्रीति दुःख का मूल है[१]। मीराँ के भाग्य में ऐसा ही दुःख भोगना लिखा था, तभी तो उसकी प्रीति ऐसे योगी से जुड़ गई है। स्वयं मीराँ कहती हैं :

तेरो मरम नाहिं पायो रे जोगी।
आसण मांडि गुफा में बैठो ध्यान हरी को लगायो।
गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी भाग लिख्यो सो ही पायो।
[ मीराबाई की पदावली पद सं० १८९ ]

एक योगी का रूप गीता के योगेश्वर कृष्ण के लिए अद्भुत नहीं कहा जा सकता, फिर भी मीराँ के इस सेल्ही, हाजरियों से युक्त योगी को गीता के कृष्ण से भिन्न ही मानना पड़ेगा। हीनयान सम्प्रदाय वाले बौद्ध भगवान बुद्ध को 'योगी' कहते थे। महायान सम्प्रदाय में योगी बुद्ध के स्थान पर बोधिसत्व की प्रतिष्ठा की गई परंतु वज्रियान सम्प्रदाय के बौद्धों तथा सिद्धों ने और उन्हीं के प्रभाव से नाथों ने अपने भगवान को योगी के रूप में स्वीकार किया। हठयोग, तंत्र तथा शैवागम के धार्मिक साहित्य में योगी शिव जी का पर्यायवाची शब्द है। नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य गोरखनाथ शैव माने जाते हैं और उनकी हठयोग-परम्परा के संस्थापक आदिनाथ स्वयं

---

बोलत बचन मधुर से मानूँ, जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जाणूँ या पार निभेगी, छाँड़ि चले अधबीच।
मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर प्रेम पियारा मीत॥ [ मी० पदा० पद सं० ६१ ]

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत॥
आसण मार अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत॥
मैं तो जाणूँ जोगी सङ्ग चलेगा, छाँड़ गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत॥ [ वही पद संख्या ५९ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



शिव जी ही थे। मीराँ के गिरधर नागर का जो योगी स्वरूप है उस पर स्पष्टतः नाथ सम्प्रदाय के योगियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय के योगियों का पर्याप्त प्रभाव था। डा० बड़थ्वाल का अनुमान है कि प्रसिद्ध योगी चरपट नाथ राजपूताने के निवासी थे[1]। उनके पश्चात् सिद्ध धूँधलीमल और गरीबनाथ राजस्थान के प्रसिद्ध योगी हुए हैं जिनका उल्लेख नैणसी की ख्यात में मिलता है[2]। सिद्ध धूँधलीमल का आश्रम धांणोद में था और उनके शिष्य गरीबनाथ ने अपना आश्रम लाखड़ी में स्थापित किया था। ऐसा जान पड़ता है कि मेवाड़ में आने से पहले मीराँ इन योगियों से प्रभावित हो चुकी थीं। ये योगी अपने भगवान को योगी के रूप में देखते थे। गीता के योगेश्वर कृष्ण से इन नाथ सिद्धों के योगी भगवान को मिलाकर मीराँ ने अपने गिरधर नागर को योगी रूप में चित्रित किया।

मीराँ के गिरधर नागर का तीसरा स्वरूप सगुण ब्रह्म का है। ब्रज की रक्षा के लिए गोवर्द्धन पर्वत धारण करने वाले भागवत के भगवान कृष्ण मीराँ के गिरधर नागर हैं। इन गिरधर नागर की सभी विशेषताओं का एक ही जगह वर्णन मीराँ ने इस प्रकार किया है :

नेरो मन बसि गो गिरधर लाल सों ॥ टेक ॥
मोर मुकुट पीताम्बरो गल वैजन्ती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमति को लाल ॥
कालिन्दी के तीर हो कान्हा गउवाँ चराय।
सीतल कदम की छहियाँ हो मुरली बजाय ॥
जसुमति के दुवरवाँ हो ग्वालिन सब जाय।
बरजहु आपन दुलरवा हो हमसों अरुझाय ॥
वृन्दाबन क्रीड़ा करै गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सब [illegible] हो ठाकुर जदुनाथ ॥

१. योग प्रवाह—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृ० ७१
२. ,, ,, ,, पृ० ७३



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



इन्द्र कोप धन बरखो मूसल जलधार।
बूड़त ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार॥
मीराँ के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय॥

[ मीराँ की शब्दावली पृ० ६ ]

इन गिरधर नागर की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वे अत्यंत सुन्दर और मनमोहन हैं। मीराँ उनके इस अपूर्व और अपरूप रूप पर मुग्ध हैं :

निपट बँकट छबि अटके। मेरे नैना निपट बँकट छबि अटके॥
देखत रूप मदन मोहन के पियत पियूख न मटके।
बारिज भवां अलक टेढ़ी मनो, अति सुगन्ध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके।
मीराँ प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नटके।

जबसे मीराँ ने उन गिरधर नागर की छबि देख ली है उसके नेत्र जैसे उन्हीं के हो गए हैं :

जबसे मोहिं नन्दनँदन दृष्टि पड़यो माई।
तब से परलोक लोक, कछू ना सुहाई।
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहैं।
कुंडल की अलक झलक कपोलन पर छाई।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल, चितवन में टौना।
खंजन अरु मधुप मीन, भूले मृग छौना॥

अथवा नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आइ।

रूँम रूँम नख सिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाइ॥

× × × × × ×

लोक कुटुम्बा बरजि बरजहीं, बतियाँ कहत बनाइ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, परहथ गए बिकाइ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



भली कहौ कोइ बुरी कहौ मैं सब लई सीसि चढ़ाइ।
मीराँ कहैं प्रभु गिरधर के बिन, पल भर रह्यो न जाइ॥

गिरधर नागर की दूसरी विशेषता है उनकी लीलाप्रियता। वे नागर हैं और सभी गोपियों से लीला किया करते हैं। सूरदास भी भगवान की लीला पर मुग्ध हैं; परन्तु जहाँ वे भगवान की बाल लीला, गोचारण लीला, माखनचोरी लीला तथा प्रेम प्रणय लीला सभी पर मुग्ध हैं और सबका वर्णन करते हैं, वहाँ मीराँ भगवान की प्रेम लीला पर ही मुग्ध हैं।

यद्यपि सभी भक्तों के भगवान बहुत कुछ समान रूप से पतितपावन और करुणानिधान हैं, फिर भी अपनी भावना और रुचि के अनुरूप भिन्न-भिन्न भक्तों ने अपने भगवान में कुछ विशेष गुणों का आरोप किया है। किसी ने उनकी दीनबंधुता और भक्तवत्सलता देखी तो किसी ने उनकी लीला-प्रियता; किसी ने उनके शील और शक्ति की प्रशंसा की तो किसी ने उनके सौन्दर्य की। उदाहरण के लिए गोस्वामी तुलसीदास अपने भगवान राम के शील गुण पर मुग्ध होकर गा उठते हैं :—

सुनि सीतापति सील सुभाऊ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ।
× × × × × ×
समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम पद, पाइहै प्रेम-पसाउ॥

और सुदामा-चरित्र के रचयिता नरोत्तमदास अपने भगवान कृष्ण की करुणा का सुंदर चित्र खींचते हैं :—

कैसे बिहाल बिवाइन सों भये, कंटक जाल गए पग जोए।
हाय महादुख पाए सखा, तुम आए इतै न कितै दिन खोए।
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुए नहिं, नैनन के जल सों पग धोए॥

तथा अंधे कवि सूरदास को भगवान कृष्ण की लीलाएँ ही अति प्रिय हैं। इन सबसे भिन्न मीराँबाई अपने गिरधर नागर के रूप और सौन्दर्य पर ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



न्यौछावर हो गई हैं भगवान के शील और शक्ति, दया और करुणा की ओर मीराँ की दृष्टि ही नहीं जाती; उनकी आँखों में तो श्यामसुंदर का रूप ही समाया हुआ है।

हमारो प्रणाम बाँके बिहारी को ॥
मोर मुकुट माथे तिलक विराजै, कुंडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर बंसी विराजै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छबि देख मगन भई मीराँ, मोहन गिरधर धारी को ॥

[ मीराबाई की पदा० पृ० सं० २]

और वे निस्संकोच भाव से अपनी सखियों ( समान भक्ति-भावना वालों ) से कह उठती हैं :—

ऐसें पिया जान न दीजे हो ॥टेक॥
चलो री सखी मिलि राखि के नैना रस पीजे हो ॥
स्याम सलोनो साँवरो, मुख देखे जीजे हो ॥
जोइ जोइ भेष सो हरि मिलैं, सोइ सोइ भल कीजे हो ॥
मीराँ के गिरधर प्रभू , बड़ भागन रीझे हो ॥

[ मीराबाई की शब्दावली पृ० ६]

यह भगवान के मोहन रूप पर रीझना नारी मीराँ को ही शोभा देता है। माधुर्य भाव की भक्ति करने वाली मीराँ के लिए अपने प्रियतम भगवान की सभी विशेषताओं को छोड़ उनका मधुर सौन्दर्य ही सबसे अधिक आकर्षक है।

अपने-अपने भगवान् के सौन्दर्य चित्रित करने में विद्यापति, सूर और तुलसी ने भी कुछ उठा नहीं रखा, परन्तु मीराँ के रूप-सौन्दर्य के चित्रण में जो तन्मयता और सजीवता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सूर और तुलसी ने एक तटस्थ कलाकार की दृष्टि से भगवान कृष्ण और भगवान राम का रूप-चित्रण किया। साहित्य की नख-शिख-वर्णन-परम्परा का पालन करते हुए तुलसीदास ने गीतावली में राम का सौन्दर्य चित्रित किया है :—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जानकी-वर सुन्दर माई।
इंद्रनील-मनि-स्याम सुभग अंग अंग मनोजनि बहु छबि छाई।
अरुन-चरन अँगुली मनोहर,नख दुतिवंत कलुक अरुनाई।
कंज दलनि पर मनहु भौम दस बैठे अचल-सु-सदसि बनाई॥

और इसी परम्परा का पालन करते हुए सूर ने भी भगवान कृष्ण की छबि अंकित की है; परन्तु नारी मीराँ ने पुरुष रूप भगवान् कृष्ण के जिस सहज-बंकिम सौन्दर्य का चित्रण किया है:

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरत साँवली सूरत, नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत,उर बैजन्ती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर सब्द रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भगतबछल गोपाल॥

उसमें जो तन्मयता और सजीवता है वह सूर और तुलसी के अलंकृत और परम्परागत वर्णनों में कहाँ मिल सकता है।

इस प्रकार मीराँ कभी निर्गुण ब्रह्म की खोज करती है, कभी सगुण ब्रह्म रूप भगवान कृष्ण की 'साँवली सूरत' पर बलिहारी जाती हैं; कभी 'निपट उदास' रहने वाले योगी के लिए व्याकुल हो उठती हैं, कभी गणिका,गीध और अजामिल के तारने वाले की दुहाई देती हैं। सारांश यह कि मीराँ की भगवान विषयक धारणा बहुत स्पष्ट न थी,जब जैसा प्रभाव-उन पर पड़ा, तब उसी के अनुरूप अपने भगवान की कल्पना कर लिया करती थीं। परंतु उनकी भक्ति-भावना अत्यंत स्पष्ट और स्थिर थी। चाहे भगवान का जो भी स्वरूप हो,चाहे वह निर्गुण हो वा सगुण,योगी हो वा गिरधर नागर, मीराँ की भक्ति-भावना सदैव एक सी है, उनकी विरह-वेदना उसी प्रकार तीव्र है; उनकी आत्मोत्सर्ग की भावना उसी प्रकार निश्चल है। भगवान का विषय बुद्धिगम्य है, चिन्तन-प्रधान है, ज्ञान और तर्क से सम्बद्ध है, इसी-लिए मीराँ उस विषय में स्पष्ट नहीं हैं, न हो ही सकती हैं। दार्शनिक चिन्तन के इस दुर्गम और जटिल मार्ग में नारी की गति कहाँ? परन्तु भक्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



भावना का विषय है, हृदय का धर्म है, अतएव इस क्षेत्र में मीराँ अत्यंत स्पष्ट और स्थिर है।

## २

**मीराँ की भक्ति**—मीराँ की भक्ति भावना के स्पष्ट दो रूप हैं (१) विनय और (२) विरह-निवेदन।

विनय के पद संख्या में बहुत ही कम हैं, सम्भवतः सब मिला कर एक दर्जन भी न होंगे जब कि विरह-निवेदन के पद संख्या में बहुत अधिक हैं और पद-रचना में भी अत्यंत उत्कृष्ट कोटि के हैं। इसलिए यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि विनय के पद मीराँ की सच्ची भक्ति-भावना के द्योतक नहीं हैं, किसी विशेष अवसर पर विशेष प्रभाव द्वारा ही वे लिखे गए थे।

विनय के इन पदों में भगवान की सर्वशक्तिमत्ता तथा उनकी असीम दया और करुणा की प्रशंसा तो अवश्य मिलती है, परंतु भक्त की ओर से उस दैन्य भाव का अभाव है जो सूर और तुलसी के विनय पदों की विशेषता है। यह सच है कि विनय के इन पदों में मीराँ ने दास्य भाव की ही भक्ति प्रदर्शित की है[१], परंतु अपनी ओर अपने गिरधर नागर की दृष्टि आकर्षित करने के लिए अपने पातक और दैन्य की दुहाई नहीं दी। जब कि सूर और तुलसी अपने को 'सब पतितन को नायक' और 'पतितन को टीको' प्रमाणित करने में अपनी सारी कला और बुद्धि लगा देते हैं, वहाँ मीराँ अपने सहज विश्वास से केवल इतना ही कहती हैं :

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी ॥
भवसागर में बही जात हूँ, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यौ संसार सगो नहिं कोई साँचा सगा रघुवर जी ॥

---

१. भज मन चरण कमल अविनासी
जेताइ दीसे धरणि गगन बिच तेताइ सब उठि जासी।
× × × × × ×
अरजी कर अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फांसी।
[ मीरांबाई की शब्दा० पृ० १-२ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मात पिता औ कुटम कबीलो, सब मतलब के गरजी।
मीराँ की प्रभु अरजी सुणलो, चरण लगावो थाँरी मरजी ॥

और भगवान के चरण-कमलों की अद्भुत विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाती हुई वे अपने मन से कहती हैं :

मन रे परसि हरि के चरण ॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविधि ज्वाला हरण ॥
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण ।
जिण चरण ध्रुव अटल कीणो, राखि अपणी सरण ॥
जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो नख सिख सिरी धरण । इत्यादि

कुछ पदों में मीराँ ने अजामिल, गणिका, सदना कसाई इत्यादि भक्तों के तारने की कथा की ओर संकेत करके अपने ऊपर कृपा करने की भी प्रार्थना की है[1] ।

मीराँ के विरह-निवेदन में जिस पीड़ा—दरद—का वर्णन है वह अत्यंत गम्भीर और अनिर्वचनीय है । मीराँ के बीसों पदों में यह व्यथा उमड़ी सी पड़ती है जैसे महासागर के अंतर का मंथन और आलोड़न उसके उत्ताल तरंगों में उमड़ा पड़ता है । केवल दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :

घड़ी एक नहिं आवड़े कि तुम दरसन बिन मोय
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय ॥
धान न भावे, नींद न आवे, बिरह सतावे मोहि ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणे कोय ॥
दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमाया रोय ।

---

१. सुन लीजे विनती मोरी, मैं सरन गही प्रभु तोरी ॥
तुम तो पतित अनेक उधारे, भव-सागर से तारे ।
मैं सबका तो नाम न जानों, कोइ कोइ भक्त बखानों ।
[मीराबाई की शब्दावली पृ० ७०]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होइ।
नगर ढंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोइ॥
पंथ निहारो डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोइ।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होइ॥
[ मीराँ० की पदा० पद सं० १०२ ]

तथा हे री मैं तो दरद दिवाणी होइ दरद न जाणै मेरो कोइ।
घाइल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपर सेज हमारी सोवणा किस विध होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सँवलिया होइ॥

मीराँ के ये अति प्रसिद्ध पद अपनी स्पष्टता और विरह की गम्भीरता के लिए अद्वितीय हैं।

हिन्दी के कतिपय समालोचकों ने जायसी के विरह-वर्णन को हिन्दी काव्य में सर्वोत्कृष्ट ठहराया है, परन्तु जायसी का विरह-निवेदन मीराँ के इन गम्भीर पदों के सामने केवल ऊहात्मक और अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियाँ ही जान पड़ती हैं। दादू का विरह-वर्णन अवश्य उत्कृष्ट बन पड़ा है, परन्तु जो व्यापकता और गम्भीरता मीराँ के पदों में है उसका लेश भी दादू के दोहों और पदों में नहीं मिलता। सीधे-सादे और स्पष्ट शब्दों में हृदय के अंतरतम की गम्भीर व्यथा का दर्शन करना हो तो देखिए मीराँ कहती हैं :—

मैं बिरहिण बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
बिरहिण बैठी रंग महल में, मोतियन की लड़ पोवै।
इक बिरहिण हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिण गिण रैन बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल कै बिछुड़ न जावै॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



विरह-निवेदन के ये पद कुछ तो निर्गुण ब्रह्म के प्रति कहे गये हैं, कुछ योगी ब्रह्म के प्रति और शेष सगुण ब्रह्म गिरधर नागर के लिए हैं। निर्गुण ब्रह्म के प्रति कहे गये पदों में अस्पष्टता और रहस्य-भावना अधिक है, परन्तु अन्य दो के प्रति कहे गए पदों में स्पष्टता और गम्भीरता है। जहाँ निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी अस्पष्ट विरह-वेदना में मीराँ कह उठती हैं :

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी ॥
जब जब सुरत लगे वा घर की पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी।
ऐसा वैद मिले कोई भेदी, देस विदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी।
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
[ मी० पदा० पद सं० १५९ ]

वहाँ अपने गिरधर नागर के प्रति उनका विरह अत्यंत स्पष्ट और तीव्र है :

तुमरे कारण सब सुख छाड्या, अब मोहिं क्यूँ तरसावौ हो।
विरह बिथा लागी उर अंतर सो तुम आय बुझावौ हो॥
अब छोड़त नहिं बणै प्रभु जी हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अङ्ग से अङ्ग लगावौ हो॥
[ मी० पदा० पद सं० १०४ ]

जोगी के प्रति विरह-निवेदन में मीराँ ने एक ओर तो उसकी उदास और अटपटी बानी की ओर संकेत किया है और दूसरी ओर भोलेपन को कोसा है जिसके कारण वह जोगी को बाँध न सकी :

जोगिया जी निसि दिन जोऊँ बाट॥
पाँव न चालै पंथ दुहेलो आडा औघट घाट॥
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भाली भोलापन कीन्हौ, राख्यौ नहिं बिलमाइ।
[ मी० पदा० पद सं० ४९ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



उसी के भोलेपन के कारण तो प्रियतम आकर लौट भी गया और वह सोती ही रह गई। निद्रा से जाग कर मीराँ को अपना सारा शृंगार असह्य-सा हो उठा, वे कह उठती हैं :

मैं जाग्यो नहीं प्रभु को मिलन कैसे होइ री।
आए मेरे सजना फिरि गए अँगना मैं अभागण रही सोइ री।
फारूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँगी वैरागण होइ री।
चुरियाँ फोरूँ माँग बखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोइ री।
निसिबासर मोहिं बिरह सतावै, कल न परत पल मोइ री।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, मिलि बिछुरो मत कोइ री[1] ॥

[ मी० पदा० पद सं० ४८ [

इस प्रकार जोगी की प्रीति केवल दुःख का मूल बनती है। वह रमता जोगी कहीं दिखाई भी पड़ जाता है तो उसी प्रकार उदास चला जाता है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं, वह अपने ही धुन में मस्त है। मीराँ उससे अनुनय करती हैं :

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं ॥
प्रेम भगति को पैंड़ो ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चँदण की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा॥

[ मी० पदा० पद सं० ५० ]

मीराँ की यह सरलता और इतना आत्मोत्सर्ग सचमुच ही अपूर्व है। भक्त तो

१—यही भाव विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के एक गीत में इस प्रकार मिलता है :

He came and sat by my side but I woke not. What a cursed sleep it was, O miserable me !

He came when the night was still, he had his harp in his hands and my dream became resonant with its melodies.

Alas, why are my nights all thus lost ? Ah, why do I ever miss his sight whose breath touches my sleep. Gitanjali 26.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



उस युग में एक से एक बढ़ कर हुए हैं, और उन्होंने बड़ी सरस भाषा में अपनी भक्ति-भावना और विरह-वेदना के गीत गाए हैं, परन्तु मीराँ के इन पदों में जितनी हार्दिकता, सरलता और गम्भीरता भरी है उतनी शायद ही कहीं देखने को मिले।

भक्ति-भावना का विश्लेषण करने वाले आचार्यों ने भक्ति के क्रमिक विकास में नव साधनाओं अथवा सीढ़ियों का उल्लेख किया है जो नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। भागवत में एक ही श्लोक में इसका उल्लेख किया गया है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णो, स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

इन साधनाओं में सब से ऊँची साधना आत्मनिवेदन की है जिसमें भक्त भगवान के प्रति आत्मसमर्पण कर देता है। मीराँ भक्ति की इसी चरम सीमा पर पहुँच कर कहती हैं :

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हांरो साँचो प्रियतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर गए उठि आऊँ।
रैन दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावें तितही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ।

[ मी० की पदा० पद सं० १७ ]

इस पराकाष्ठा पर पहुँचकर भक्त अपनी भक्ति को गम्भीरता और जीवन के आनन्द अथवा विरह-वेदना की अतिशयता के कारण उन्मत्त सा हो उठता है। मीराँ भी इस प्रेम में एकदम पागल हो उठती हैं। मीराँ का उन्माद आनंदातिरेक के कारण नहीं विरह की वेदना के कारण है। अपने गिरधर नागर की प्रेम-कटारी से वे घायल हो गई हैं :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आली साँवरो की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है।
लागत बेहाल भई, तन की सुधि बुधि गई;
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है।
अथवा प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे मने लागी कटारी प्रेमनी॥

और इस प्रेम की कटारी का घाव भी साधारण नहीं है। सूर ने ठीक ही कहा है 'जोइ लागे सोई पै जाने प्रेम बान अनियारो' और मीराँ भी इस घाव के सम्बन्ध में कहती हैं :

घायल की गति घायल जाणै की जिन लाई होय
जौहरी की गति जौहरी जाणै की जिन जौहर होय॥

इन घाव की कोई दवा नहीं। इस घाव को अच्छा करने वाला वैद्य भी एक ही है :

मीराँ की यह पीर मिटै जब वैद सँवलिया होय।

परन्तु उस 'सँवलिया वैद' का मिलना असम्भव ही है। लेकिन मीराँ को अपनी पीड़ा पर विश्वास है वे उस पीड़ा को लेकर उसकी प्रतीक्षा में बैठ जाती हैं। रो-रोकर गा-गाकर अपने गिरधर नागर को बुलाती हुई मीराँ वेदना में पागल हो उठती हैं। सब लोग तो आते हैं केवल वही सँवलिया न जाने कहाँ छिपा है जो आता ही नहीं। मीराँ व्याकुल हो कर, खीझ कर कह उठती हैं :

कोइ कहियो रे हरि आवन की, आवन की मन भावन की।
वे नहिं आवत लिख नहिं भेजत, बान पड़ी ललचावन की॥
ये दोउ नैन कह्यो नहिं मानत, अँसुआँ बहैं जैसे सावन की॥

लीलामय भगवान को ललचाने की आदत पड़ गई है और मीराँ की आँखें भी जैसे पागल हो गई हैं, किसी का कहना ही नहीं मानतीं, और आँसुओं की धारा बहती ही जाती है। कितनी मार्मिकता से दरद-दिवानी मीराँ ने अपनी व्यथा का वर्णन किया है। यह विरहोन्माद आत्म-निवेदन की चरम सीमा है और केवल मीराँ ही इस सीमा तक पहुँच सकी हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



## ३

भगवान और भक्ति के अतिरिक्त मीराँ ने भगवद्भक्तों की कथा और लीला सम्बंधी पद भी गाए हैं। नरसी जी का माहरो, यदि मीराँ की ही प्रामाणिक रचना है तो उसमें भक्त नरसी मेहता के भात भरने की कथा लिखी गई है। मीराँ के पदों में भगवान कृष्ण की अनन्य भक्त व्रज-गोपियों की भगवान के प्रति प्रणय लीलाओं का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है। मीराँ की ही भाँति व्रज-गोपियाँ भी भगवान् के जादू कर देने वाले सुंदर रूप पर अतिशय मुग्ध हैं इसलिये तो दधि बेचने जाकर गोपियाँ दधि का नाम भी भूल जाती हैं और श्यामसुंदर की ही रट लगाती जाती हैं :

या ब्रज में कछु देखयो री टोना ॥ टेक ॥
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले नन्द जी के छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारा, ले लेहु री कोई स्याम सलोना।
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मन मोहना ॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुधर रस लोना ॥

[ मी० पदा०पद सं० १७८ ]

उन गोपियों के लिए पूरे व्रज-मंडल में केवल एक ही पुरुष मीराँ का गिरधर नागर था और वे सभी उस के अपूर्व मोहन रूप पर मुग्ध थीं और वह मनमोहन भी इन गोपियों से सभी प्रकार की लीलाएँ किया करता था। ये गोपियाँ कभी तो अपनी सहज नारी-प्रकृति के कारण उस मनमोहन से लजा करती हैं :

आवत मोरी गलियन में गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी।

और कभी धृष्ट मनमोहन से प्रार्थना करती हैं :

छाँडो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की मेरे भरोसे गुपाल रहो ना।
जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मारे प्राण हरो ना।
बृन्दाबन की कुंज गलिन में, रीत छोड़ अनरीत करो ना ॥

[ मी० पदा० पद सं० १७३ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



और कभी अपनी प्रणय-लालसा के कारण अतिशय धृष्ट होकर कह उठती हैं :

वंशीवारे हो कान्हा मोरी रे गगरी उतार
गगरी उतार मेरो तिलक सँभार।
यमुना के नीरे तीरे बरसीलो मेह।
छोटे से कन्हैया जी सो लागी म्हारो नेह।
वृन्दावन में गउएँ चरावे तोर लियो गरवा को हार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तोरे गई बलिहार॥

[ राग कल्पद्रुम द्वितीय भाग पृ० ५३ ]

अथवा होली के उच्छृंखल और निर्लज्ज वातावरण में स्वाभाविक स्पर्द्धा से कहती हैं :

मोरी चुनर भीजे मैं रे भिजोऊँगी पाग।
नंद महर जी को कुँवर कन्हैया, जान न देऊँगी आज॥

[ राग कल्पद्रुम द्वि० भा० पृ० ३३० ]

इस प्रकार ये गोपियाँ यमुना नदी के किनारे, पनघट पर, गलियों में, बन उपवन में, कूल और कछार पर भगवान से प्रेम लीलाएँ करती रहती हैं। मीराँ भी अपनी कल्पना में उन गोपियों में मिलकर अपने गिरधर नागर से सभी प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हैं, और भगवान के मथुरा गमन के पश्चात् गोपियों के विरह-निवेदन में जैसे मीराँ का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

भगवान के अगणित भक्तों में मधुर भाव की भक्ति करने वाली ब्रज गोपियाँ ही मीराँ की आदर्श थीं। लगभग सभी बातों में मीराँ का उन गोपियों से साम्य था और बहुत सम्भव है कि ब्रजगोपियों के नाम से वे अपनी ही सुषुप्त प्रणय-वासना और प्रेम-लीलाओं का कल्पित चित्र उपस्थित कर रही हों। इन मधुर पदों में इतनी तन्मयता और हार्दिकता भरी है कि जान पड़ता है मीराँ स्वयं ब्रज गोपी होकर ये सब प्रेम लीलाएँ कर चुकी हैं। एक-एक पद से मीराँ की प्रेम-भक्ति साकार हो उठती है। केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



नागर नंदा रे बाल मुकुन्दा रे छोड़ी द्योने जग ना धंधा, नागर नंदा,
मारी नजरे रहेगो रे नागर नंदा ॥
काम ने काज मने काँई नथ सूझे, भूली गई छूँ मारा घर धंधा रे;
आछूँ अवलूँ में ते काई नव जोयूँ जोया जोया छे पूनम केरा चंदा रे;
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, लागी छे मोहनी मने फंदा रे ॥

## ४

**गुरु को अंग**—मीराँ के पदों में रैदास संत को गुरु मान कर कितने ही पदों में उनकी प्रशंसा मिलती है, परंतु जैसा पहले लिखा जा चुका है, मीराँ रैदास की शिष्या नहीं थीं और सम्भवतः किसी भी संत अथवा आचार्य की शिष्या नहीं हुईं। फिर भी उनके पदों में कहीं-कहीं सतगुरु की वंदना मिलती है। उन पदों की प्रामाणिकता के सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परंतु सम्भव है, परम्परा से प्रभावित हो किसी सतगुरु के लिए उन्होंने कुछ पद लिखे हों। परंतु ये पद संख्या में बहुत कम हैं। एक उदाहरण देखिए :

मैंने राम रतन धन पायौ।
बसत अमोलक दी मेरे सतगुरु करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सबै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई न चोर न लेवै, दिन दिन बधत सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तरि आयौ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि जस गायौ॥

[ मी० पदा० पद सं० १५७ ]

सतगुरु की महिमा संत-परम्परा में बहुत अधिक है और मीराँ ने भी उस परम्परा का निर्वाह किया है।

## ५

**उपदेश और चेतावनी**—भक्त, भक्ति भगवंत और गुरु के अतिरिक्त मीराँ ने अपने जीवन के अनुभव बताए हैं तथा सांसारिक जीवों की कल्याण-कामना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



से उन्हें उपदेश और चेतावनी भी दी है। उन्होंने अपने अनुभव से देख लिया था कि संसार में जितनी वस्तुएँ हैं वे सभी नाशवान हैं। तुलसीदास ने मानस में जो लिखा है :

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।

ठीक यही बात कितने सुंदर ढंग से मीराँ ने कही है :

भज मन चरण कँवल अविनासी
जे ताइ दीसे धरण गगन बिच, ते ताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा लिए करवत कासी।
इण देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी॥

यह सारा संसार साँझ होते ही विलीन हो जाता है, संसार असार है, नश्वर है, यदि कोई अविनाशी वस्तु है तो वह केवल भगवान का चरण-कमल और नाम है और मीराँ उसी से स्नेह करने का उपदेश करती है :

राम नाम रस पीजे मनुआँ राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजे।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह कूँ, चित से बहाय दीजे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहिं के रँग में भीजे।

संसार की नश्वरता और भगवान के अविनाशत्व के अतिरिक्त मीराँ यह भी चेतावनी देती हैं कि भक्ति और भजन, मानव-शरीर और मानव-चेतना से ही सम्भव है और यह मानव शरीर बड़े भाग्य से मिलता है और वह भी केवल थोड़े समय के लिए। इसलिए इस सुअवसर को हाथ से जाने देना ठीक नहीं है। भवसागर से पार जाने का यही समय है और इस समय भी मानव यदि अचेत रहेगा तो फिर समय पर चूक कर पछताने के सिवाय और कुछ हाथ न लगेगा। मीराँ कहती हैं :

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



बढ़त छिन छिन, घटत पल पल जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यूँ पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौसागर अति जोर कहिए, अनंत ऊँडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार॥

[ मी० पदा० पद सं० १९५ ]

और भी मनखा जनम पदारथ पायो ऐसी बहुर न आती॥
अबके मोसर ज्ञान विचारो, राम नाम मुख गाती॥

[ मी० पदा० पद सं० १९७ ]

इस प्रकार मीराँ संसार की नश्वरता और मानव शरीर तथा चेतना की अमूल्यता दिखाकर अपने मन को और उसी के बहाने सारे संसार को भगवान् की भक्ति की ओर प्रेरित करती हैं।

उपदेश और चेतावनी के पद भी मीराँ के पदों में बहुत कम हैं और वे कुछ पद भी सम्भवतः परम्परा के प्रभाव से ही लिखे गए। सच तो यह है कि गुरु की वंदना, चेतावनी, उपदेश तथा भक्तों की प्रशंसा और कथा-वर्णन के लिए मीराँ के पास न तो अवकाश ही था न रुचि, उन्हें तो केवल अपने गिरधर नागर और उनके विरह में उनकी प्रतीक्षा के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा न लगता था। यद्यपि मीराँ ने भगवान, भक्त, गुरु और उपदेश तथा चेतावनी सभी पर कुछ पद लिखे हैं, परन्तु भक्ति ही मीराँ का विशेष विषय था और मीराँ को हम विशुद्ध भक्ति-भावना और विरह-निवेदन का कवि कह सकते हैं। मीराँ ने स्वयं अपने को विरह दिवानी कहा है :

मिलता जाज्यो हो गुर-ज्ञानी थाँरी सूरत देखि लुभानी।
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो मैं हूँ विरह दिवानी॥

और इस विरह दिवानी पर हिन्दी साहित्य को समुचित गर्व है।

६

भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु और उपदेश तथा चेतावनी के अतिरिक्त प्रकृति का चित्रण भी कहीं-कहीं भक्त कवियों की कविता में मिल जाता-



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



है। यह चित्रण प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता मान कर नहीं किया गया, वरन् अधिकांश उद्दीपन विभाव के ही रूप में आया है। मिलन-सुख अथवा विरह की वेदना को उद्दीप्त करने वाली प्रकृति ने ही भक्त कवियों और बाद के रीति कवियों को आकृष्ट किया। भक्त कवि अपनी भक्ति और अपने भगवान में ही इतने मग्न हो रहे थे कि उन्हें प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का ध्यान भी न था। फिर भी परम्परा वश मिलन-सुख और विरह-वेदना को उद्दीप्त करने वाली प्रकृति पर उनकी दृष्टि पड़े बिना न रही। सूर और विद्यापति के पदों में प्रकृति के इस रूप का बहुत ही सुन्दर और व्यापक वर्णन मिलता है। मीराँ की विरह-वेदना अंतर्मुखी थी इसीलिए उद्दीपन विभाव के रूप में भी प्रकृति का चित्रण उनकी कविता में बहुत कम है। केवल एक पद[1] में उन्होंने 'बारहमासा' की परम्परा का पालन कर दिया है। केवल वसंत और वर्षा का वर्णन कुछ विस्तार से मिलता है क्योंकि ये दोनों ऋतुएँ कवि-हृदय को प्रभावित करती ही हैं। इन दोनों ऋतुओं के वर्णन में भी वसंत का वर्णन केवल होली के रूप में अत्यंत संक्षिप्त है। होली में सारे संसार को राग-रंग में मस्त देखकर नारीजनोचित स्पर्धा के भाव से मीराँ केवल इतना ही कहती हैं :

किण सङ्ग खेलूँ होली, पिया तज गए हैं अकेली।
अथवा हे लो पिया बिन मोहि न भावै, घर आँगण न सुहावे।
दीपक जोय कहा करूँ हेली, पिय परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सुसक सुसक जिय जावे।
नींद नैन नहिं आवे।

परन्तु वर्षा ऋतु ने विरहिणी मीराँ का ध्यान पूर्ण रूप से आकृष्ट किया। बादलों को देखकर जब सुखी लोगों का भी मन डोल जाता है, तब वियोगी का तो कहना ही क्या[2]? काले-काले बादलों ने मीराँ का धैर्य हर लिया वे अधीर होकर पुकार उठती हैं :

---

१. देखिये मीराँबाई की पदावली पद सं० ११६।

२. धिग् लोके भवति सुखिनोप्यन्यथा वृत्ति चेतः। कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किम् पुनर्दूर संस्थे
मेघदूतम् पूर्वमेघः, तृतीय श्लोक उत्तरार्द्ध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



नन्द नन्दन बिलमाई, बदरा ने वेरी माई ॥ टेक ॥
इत घन लरजे, उत घन गरजे, चमकत बिज्जु सवाई ॥१॥
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आया, पवन चले पुरवाई ॥२॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सब्द सुनाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरन कमल चित लाई ॥

[ मी० शब्दा० पृ० सं० ४८ ]

और भी, बादल देख झरी हो स्याम मैं बादल देख झरी।
काली पीली घटा ऊमंगी बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पानिहि पानी, हुई सब भोम हरी ॥

[ मी० शब्दा० पृ० सं० ४७ ]

कभी तो बादलों की गरज में मीराँ को अपने गिरधर नागर के आने की आवाज़ सुनाई पड़ती है और उन्हें यह चिन्ता सताती है कि :

मतवारो बादल आयो रे, हरि के संदेसो कुछ नहिं लायो रे ॥
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सबद सुनायो रे।
कारी अंधियारी बिजुली चमके, विरहिन अति डरपायो रे ॥

एक तो सावन ने यों ही मन को सरस बना कर गिरधर नागर से मिलने की उत्कंठा अत्यंत तीव्र कर दी है, दूसरे पपीहा ने 'पी कहा' की रट लगा कर विरह-वेदना को असह्य बना दिया है। इसीलिए भूत मात्र से स्नेह रखने वाली मीराँ पपीहे को वैरी समझकर उससे पूछती हैं :—

रे पपइया प्यारे कब को वैर चितारो ॥
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकारो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़े करवत सारो।

प्रकृति का चित्रण मीराँ ने बहुत ही कम किया है परंतु जो कुछ भी किया है वह बहुत ही स्वाभाविक और सुन्दर है, अत्यंत कवित्वपूर्ण है। व्यर्थ की अतिशयोक्तियों में उलझना, केवल परम्परा का पालन करना मीराँ का स्वभाव न था, उन्होंने तो केवल अपनी स्वाभाविक अनुभूतियों को सरलतम शब्दों में प्रकाशित किया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# चौथा अध्याय

## मीराँ की प्रेम-साधना

महाप्रभु चैतन्यदेव ने मनुष्य मात्र का धर्म तीन सत्यों पर अवलम्बित माना है; पहला सम्बंध—स्रष्टा और सृष्टि का सम्बंध; दूसरा अभिधेय—ईश्वर के प्रति मानव का कर्तव्य और तीसरा प्रयोजन अर्थात् मानव-सृष्टि का भविष्य। इन तीनों में सम्बंध का ज्ञान ही सत्य की पहली सीढ़ी है। दर्शन के क्षेत्र में ब्रह्म और जगत् (जीव) का सम्बंध; धर्म के क्षेत्र में ईश्वर और मानव प्राणी का सम्बंध तथा काव्य के क्षेत्र में शब्द और अर्थ का सम्बंध ही मुख्य विचारणीय विषय है। अस्तु, भक्ति-साहित्य में भगवान् और भक्त का सम्बंध ही सबसे प्रथम और प्रधान वस्तु है।

दर्शन की भाषा में जो ब्रह्म और जीव का सम्बंध है काव्य की भाषा में वही 'तुम और मैं' के रूप में व्यक्त किया गया है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भगवान तक पहुँचने के तीन मार्ग स्थिर किये हैं—पहला मार्ग अहं अथवा मैं का मार्ग है, जिसमें कि साधक कहता है कि सभी कुछ यहाँ तक कि ब्रह्म भी मैं हूँ; दूसरा मार्ग तू अथवा तुम का मार्ग है जिसमें साधक कहता है कि ईश्वर! सभी स्थान पर तुम्हीं तुम हो और यह सभी कुछ तुम्हारा ही है तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। तीसरा मार्ग 'तुम और मैं' का मार्ग है जिसमें साधक कहता है कि 'भगवान्! तुम स्वामी हो मैं सेवक हूँ, तुम प्रियतम हो मैं दास हूँ।' इन तीनों मार्गों में किसी एक की भी पूर्ण साधना से भगवान् मिल जाते हैं। भक्त कवियों का मार्ग 'तुम और मैं' का मार्ग है, उन्होंने 'तुम और मैं' का सम्बंध विभिन्न रूपों में प्रकट किया है। कबीर इस सम्बंध को इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

कबिरा कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



गोस्वामी तुलसीदास इसी सम्बंध की चर्चा करते हुए कह उठते हैं :—

तू दयालु, दीन हौं, तु दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सो।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा, तू सब बिधि हितु मेरो॥

संतकवि रैदास भी इसी 'तुम और मैं' के सम्बंध की चर्चा करते हैं :—

प्रभु जी तुम चंदन मैं पानी। जाकी बास अँग अङ्ग समानी।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी ज्योति जलै दिन राती।

और इसी सम्बंध की चर्चा करते हुए आधुनिक रहस्यवादी कवि निराला भी गा उठते हैं :—

तुम तुङ्ग हिमालय शृंग और मैं चंचल-गति सुर-सरिता॥

मीराँबाई भी उसी 'तुम और मैं' की विवेचना करती हुई गा उठती हैं :—

तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज घामा॥

सूर्य और उसके प्रकाश के समान अभेद भाव रहते हुए भी 'तुम' और 'मैं' में भेद भी है और साधारण भेद नहीं बहुत बड़ा भेद है। इसीलिए तो मीराँ एक स्थान पर लिखती हैं:—

जल तें न्यारी कान्हा कबुवों न होऊँगी; तुम हो पुरुष हम नारी।
लाज मोहिं आवत भारी।

यह ब्रह्म और जीव का एक साथ ही अभेद और भेद भाव दार्शनिक दृष्टि से निम्बार्क के द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद सिद्धांत के अनुरूप है। द्वैताद्वैत सिद्धांत के अनुसार जीव और ब्रह्म में अद्वैत और अभेद भाव भी है, साथ ही द्वैत और भेद भाव भी; जिस प्रकार महासागर और उसकी लहर में अभेद भाव है क्योंकि दोनों ही जल हैं और साथ ही भेद-भाव भी है, क्योंकि महासागर अत्यंत विशाल है और लहर उसी का अत्यंत लघु व्यक्त रूप है। जाग्रत अवस्था में ब्रह्म और जीव दो हैं परन्तु तुरीयावस्था अथवा समाधि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



में दोनों में अभेद भाव स्थापित हो जाता है। मीराँ दार्शनिक नहीं थीं, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अज्ञात रूप से वे इसी द्वैताद्वैत सिद्धांत की मानने वाली थीं। मूल रूप से भगवान और भक्त में अभेद भाव होते हुए भी व्यक्त रूप से दोनों में बहुत भेद है। इस भेद को लौकिक दृष्टि से मीराँ ने पुरुष और नारी का भेद माना है।

यह पुरुष और नारी का सम्बंध लौकिक दृष्टि से स्पष्ट है; परन्तु केवल इतना कहने से काम नहीं चलेगा। मानव-समाज में नर और नारी के बीच अनेक सम्बंध हैं। नर-नारी का सम्बंध ही मानव-समाज की चिरन्तर समस्या है। अस्तु, 'तुम हो पुरुष हम नारी' मात्र कहने से यह सम्बंध स्पष्ट नहीं होता कुछ और भी कहना आवश्यक हो जाता है। मीराँ भी केवल इतना ही कह-कर चुप नहीं रही हैं, उन्होंने भी इस पुरुष और नारी के सम्बंध को अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है :—

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसन बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, जासू जीवन होय।
नींद न आवै धान न भावै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूँ री, मेरा दरद न जाणे कोय॥

तुम ( पुरुष ) मेरे नारी जीवन के प्राण हो, तुम्हारे ( पुरुष के ) दर्शन बिना मुझे ( नारी को ) एक घड़ी भी चैन नहीं मिलता, तुमसे ( पुरुष से ) ही मेरा ( नारी का ) जीवन है। तुम्हारे ( पुरुष के ) बिना मैं (नारी) तुम्हारे विरह में घायल के समान घूमती रहती हूँ। न मुझे नींद आती है, न ध्यान भाता है, मेरा दर्द कोई भी नहीं जान सकता। यह 'तुम और मैं' की बड़ी स्पष्ट व्याख्या है। इससे भी स्पष्ट देखनी हो तो देखिए तुम अर्थात् अपने भगवान् की स्पष्टतम व्याख्या करती हुई वे कहती हैं :—

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं बिसरूं दिन राती।
'तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ-चढ पंथ निहारूँ, रोय रोय अखियाँ राती॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



यो संसार सकल जग झूँठो, झूठा कुलरा न्याती।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती॥
× × × × × ×
पल पल तेरा रूप निहारूं, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित राती॥
[ मी० पदा० पद सं० १०६ ]

और भी मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगट, मेरो पति सोई।
छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।

अर्थात् भगवान मीराँ का सच्चा पति है; वे कुल-कानि, सामाजिक बंधन सब का उल्लंघन कर उसी मोरमुकुट वाले को ही अपने जन्म और मरण का साथी बनाती हैं और उसी का रूप पल पल देखकर सुख पाती है। इसी प्रकार 'मैं' की व्याख्या करती हुई वे कहती हैं :—

हेरी मैं तो दरद दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय।

और भी राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री॥टेक॥
तलफत तलफत कल न परत है विरह बाण उर लागी री।
निस दिन पंथ निहारूँ पीव को, पलक न पल भरि लागी री॥
पीव पीव मैं रटूँ रात दिन, दूजी सुधि बुधि भागी री॥
विरह भवंग मेरो डस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेटि गुसाईं, आइ मिलौ मोहि सागी री॥
मीराँ ब्याकुल अति अकुलानी, पिया की उमंग अति लागी री॥
[ मी० पदा० पद सं० ९१ ]

इस प्रकार मीराँ ने अपने भगवान् का और अपना सम्बंध स्पष्टतम शब्दों में प्रकट कर दिया है। वह गिरधर नागर मीराँ का प्रियतम पुरुष है, जिससे मिलने के लिए वे अत्यधिक उत्कंठित हैं और मीराँ अपने गिरधर नागर की दासी मीराँ नारी हैं जो अपने प्रियतम के विरह में पागल सी घूमती फिरती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



हैं। सारांश यह कि मीराँ का अपने भगवान् के साथ प्रणय प्रेम का सम्बंध है और वह प्रेम भी साधारण नहीं जीवनव्यापी चिरंतन विरह का रूप धारण करने वाला प्रेम है। इसीलिए इस प्रेम को साधारण प्रेम की संज्ञा न देकर प्रेम-साधना का नाम दिया गया है। यह प्रेम सचमुच ही एक साधना है और वह भी साधारण साधना नहीं, सम्भवतः इससे ऊँची कोई साधना नहीं है। मीराँ के शब्दों में ही उस साधना का एक वर्णन सुनिए :—

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो॥
सब सखियन मिल सीख दई मन एक न मानी हो।
बिन देख्याँ कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो॥
अंग अंग ब्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अंतर वेदन विरह की वह पीर न जानी हो।
ज्यूँ चातक घन को रटै; मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ ब्याकुल विरहिणी सुध बुध बिसरानी हो॥

यह चिरंतन विरह को प्रेम-साधना महत्तम प्रेम की प्राण है, इसी के द्वारा वह अमरत्व प्राप्त करके युग-युग में कितने काव्य और कितने अमूल्य, आँसू संचित कर जाता है, यह प्रेम-साधना मिलन के अभाव में ही अतिपूर्ण और दारुण व्यथा में ही अति मधुर है।

प्रेम की चरम परिणति विरह में होती है और विरह की चरम परिणति इस चिरंतन विरह-साधना में। मीराँ इसी चिरंतन विरह-साधना में महान् हैं। उनकी इस प्रेम-साधना अथवा विरह-साधना की तुलना केवल राधा की विरह-साधना से की जा सकती है। बंगाल के वैष्णव कवियों ने राधा के प्रेम और विरह की बड़ी सुंदर और मधुर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। मैथिल कोकिल विद्यापति और सच्चे कवि-हृदय सूर ने भी राधा के प्रेम और विरह की मर्मस्पर्शिणी व्यंजना की है। यहाँ दोनों की एक तुलनात्मक समीक्षा अप्रासंगिक न होगी।

१ देखिए शरच्चन्द्र चटर्जी लिखित पत्र-निर्देश का अंतिम पैराग्राफ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



**राधा और मीराँ**—राधा और मीराँ दोनों ने ही भगवान् कृष्ण से प्रेम किया था। बंगाल के वैष्णव कवियों तथा विद्यापति ने राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम प्रथम दर्शन में ही व्यक्त किया है। यह प्रेम भी एक ही ओर नहीं दोनों ओर है; श्रीकृष्ण जी भी प्रथम दर्शन में ही अपना हृदय खो बैठते हैं। प्रथम दर्शन के पश्चात् ही राधा और कृष्ण का प्रेम व्यक्त करते हुए विद्यापति लिखते हैं :

जबहिं दुहुँक दिठि बिछुरल, दुहु मन दुख लागु।
दुहुक आस दिय बूझल, मनमथ आँकुर भांगु।
बिरह दहन दुहु तावय, दुहु समीहय मेलि।
एकक हृदय एक न पाउल, ते नहिं पाउल केलि॥

यह रूपजन्य आकर्षण आगे बढ़ कर प्रेम का प्रौढ़ स्वरूप ग्रहण करता है। दूसरी ओर अंधे कवि सूरदास को सम्भवतः यह प्रथम दर्शन का रूपजन्य प्रेम रुचिकर न था। इसीलिये उन्होंने बालक्रीड़ाओं में ही राधा-कृष्ण का मिलन करा कर साहचर्य द्वारा प्रेम का प्रौढ़ स्वरूप प्रकट किया। परंतु मीराँ का अपने गिरधर नागर के प्रति जो प्रेम है उसका प्रारम्भ न प्रथम दर्शन से होता है, न साहचर्य द्वारा उसमें विकास और प्रौढ़ता आती है। वह प्रेम विरह से ही प्रारम्भ होता है और विरह में ही उसकी चरम परिणति है। यह बात कुछ असम्भव सी जान पड़ती है, परन्तु सत्य है। गिरधर नागर के प्रति अपनी प्रीति का वर्णन करती हुई मीराँ कहती हैं :

मेरी उनकी प्रीति पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ।

परन्तु यह कितनी पुरानी प्रीति है इसका कुछ ठिकाना नहीं। कहीं-कहीं संकेत रूप में मीराँ ने अवश्य बतला दिया है कि यह प्रीति इस जन्म से भी पुरानी है, वह किसी पूर्व जन्म का प्रेम है :

मेरे प्रीतम प्यारे राम ने लिख भेजूँ री पाती॥
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हो जान बूझ गुझ बाती।
ऊँची चढ चढ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखिया राती।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



तुम देख्याँ बिन कल न परत है, हियो फटत मोरी छाती।
मीराँ कहे प्रभु कब रे मिलोगे, पूर्व जन्म के साथी।

अथवा हेली म्हाँसूँ हरि बिनि रह्यो न जाय॥
सास लड़ै मेरी नणद खिजावै राणा रह्या रिसाय।
× × × × × ×
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर और न आवे म्हाँरी दाय।

[ मी० पदा० पद सं० ४६ ]

इस प्रकार मीराँ की प्रीति पुरानी अवश्य है, परन्तु कितनी पुरानी है यह कोई भी नहीं कह सकता। किसी पूर्व जन्म में जब वे सम्भवतः कोई गोपी रही होंगी तब प्रथम दर्शन में अथवा बाल-क्रीड़ा के मिलन और साहचर्य द्वारा ही भगवान् कृष्ण के प्रति उनका प्रेम हो गया होगा और वही प्रेम इस जन्म में भी किसी भूली हुई स्मृति के समान जाग उठा है। जब से वह पुरानी प्रीति मीराँ की चेतना में साकार हो उठी है तभी से वे विरह में व्याकुल हो गई हैं। इस प्रकार मीराँ का प्रेम विरह से प्रारम्भ होकर विरह में ही समाप्त हुआ।

मीराँ के इस जन्म में उनकी पुरानी प्रीति जागने का कुछ वर्णन उनके कुछ पदों में मिलता है। एक स्थान पर मीराँ लिखती हैं:

माई म्हाँने सुपने में, परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आविया जी, सुपना विस्वा बीस।

[ मी० पदा० पद सं० २७]

और भी, सोवत ही पलका में मैं तो, पलक लगी पल में पिउ आए।
मैं जु उठी प्रभु आदर देन कूँ, जाग परी पिव ढूंढ़ न पाए।
और सखी पिउ सूत गमाये, मैं जु सखी पिउ जागि गमाए।
आज की बात कहा कहूँ सजनी, सपना में हरि लेत बुलाए।
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी, आज भये सखि मन के भाए।

अस्तु, कल्पना अथवा स्वप्न में ही अपने गिरधर नागर का दर्शन पाकर मीराँ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



ने उन्हें अपना लिया और अपना ही नहीं लिया उन्हें मोल ही ले लिया और उन पर अपना सब कुछ न्यौछावर भी कर दिया :

माई री मैं लीयो गोविन्दो मोल ॥ टेक ॥
कोई कहै छाने, कोई कहै चौड़े, लियो री बज्जंता ढोल।
कोई कहै मुँहघो कोई सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री आँखी खोल।
याही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसन दीज्यौ, पूरब जनम कौ कोल।

मीराँ ने अपने प्रियतम को लुक-छिप कर नहीं, ढोल बजा कर, तराजू पर तौल कर, अपनी आँखें खोल कर अच्छी तरह परीक्षा कर लेने के पश्चात् ही मोल लिया है। यह प्रेम अद्भुत और अपूर्व है। प्राचीन आचार्यों के लक्षण ग्रंथों में भी स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन तथा गुणों का गान सुनकर पूर्वानुराग उत्पन्न होना स्वीकार किया गया है, परन्तु वह पूर्वानुराग केवल पूर्वानुराग ही होता है, प्रेम की इस चरम परिणति को कभी प्राप्त नहीं होता। पूर्वानुराग के पश्चात् मिलन होना प्रेम की प्रौढ़ता के लिए आवश्यक माना गया है। परंतु यहाँ मीराँ के पूर्वानुराग ने बिना मिलन के ही प्रेम की प्रौढ़ता ही नहीं प्राप्त की, वरन् वह प्रेम की चरम सीमा तक पहुँच गई। वह पूर्व जन्म के संस्कार द्वारा ही सम्भव हो सकता है। महाकवि कालिदास ने भी कहा है कि मन पिछले जन्म के सम्बन्ध को भली भाँति पहचान ही लेता है।[1]

मिलन के अभाव में भी मीराँ का प्रेम और विरह किसी भी प्रेम-योगिनी से कम नहीं था। सच तो यह है कि विरह-साधना में मीराँ अद्वितीय हैं। अपने राम के लिए उनकी प्रतीक्षा का एक राग सुनिए :

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ ॥टेक॥
दरस बिना मोहिं कछु न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ।

१. रतिस्मरो नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला।
गतेयतस्मात्प्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तर सङ्गतिज्ञम् ॥
[ रघुवंश, सप्तम सर्ग, १५ वां श्लोक ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



तलफत तलफत बहु दिन बीता, पड़ी विरह की पाथड़ियाँ।
अब तो बेगि दया कर साहिब, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ।
नैण दुखी दरसन को तरसे, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
राति-दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ॥

यह चिरंतन विरह और चिरंतन प्रतीक्षा ही मीराँ की प्रेम-साधना है।

## २

आचार्य रामानुज ने स्नेह ( तेल ) के स्निग्ध और सतत प्रवाह के समान भगवान् के अखंड ध्यान को ही भक्ति की संज्ञा प्रदान की थी। इस अखंड ध्यान के लिये भगवान् के ऊपर पूर्ण आस्था और उनके प्रति अविरल और अटल प्रेम अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार की भक्ति में भावना की अपेक्षा ध्यान और धारणा की ही महत्ता विशेष है। भक्ति का शास्त्रीय रूप यही है और गीता में भगवान् ने इसी ज्ञान-समन्वित-भक्ति का उपदेश किया था। पूर्ण विश्वास और श्रद्धा के साथ भगवान् का ध्यान ही अलौकिक भक्ति है। परन्तु यह भक्ति केवल कुछ ज्ञानियों और योगियों की ही सम्पत्ति हो सकती थी, साधारण जनता इस उच्च कोटि की अलौकिक भक्ति-भावना तक पहुँच ही नहीं सकती थी, सम्भवतः इसी कारण बाद के भक्तों ने ध्यान और धारणा की चर्चा तक न की। उन्होंने जिस भक्ति का निरूपण किया उसमें भावना के अतिरेक में भगवान् के प्रेम का आनन्द प्राप्त करना ही मुख्य था। यह आनन्द भी अलौकिक अथवा इंद्रियों के अतीत न था, वरन् पूर्ण रूप से लौकिक और इंद्रियगम्य था। जैसे कामी पुरुष इंद्रियों के सुख की ही कामना करता है, उसी प्रकार तुलसीदास भी राम की भक्ति की कामना करते हैं :

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
त्यों रघुवीर निरन्तर, प्रिय लागिहि मोहिं राम॥

यह भक्ति का आनंद इतना गम्भीर और अद्भुत है कि भक्तगण इसके पीछे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों पदार्थों को तुच्छ मानते हैं। भागवत में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



इसी लौकिक भक्ति का प्रतिपादन किया गया है जो हृदय की एक मधुर और सरस भावना की बाढ़ के तुल्य है, जो एक नशा है, एक उन्माद है। कबीर स्पष्ट शब्दों में उपदेश करते हैं :

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम अमी रस का रे।

और मीराँ भी इसी नशा और उन्माद का वर्णन करती हुई कहती हैं :

लगी मोहिं राम खुमारी हो।
रिमझिम बरसै मेहड़ा भीजे तन सारी हो।

इस लौकिक भक्ति-भावना के अनुभव से जिस सात्विक भाव और अनुभाव की अभिव्यक्ति होती है उसका वर्णन भक्त कवियोंने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित-मानस में भक्तों के सात्विक भावों का, उनके भक्ति से द्रवित हृदय का, अविरल अश्रुधारा, गदगद कंठ, हास्य और प्रसन्नता का बड़ा ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। अरण्य कांड में 'प्रेम मगन' सुतीक्ष्ण का एक चित्र देखिए :

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी।
दिसि अरु विदिसि पन्थ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा।
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करै गुन गाई।

यह प्रेम के मतवाले का उन्माद है और भक्ति-काल इसी उन्माद की एक व्यापक अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। भक्त के अंतरतम की आनन्द-धारा बाढ़ के जल के समान सभी इन्द्रियों से फूट निकलती थी। तभी तो मीराँ गा उठती हैं :

मैं तो साँवरे के रङ्ग राँची।
साजि सिंगार बाँध पग घुँघुरू लोक लाज तजि नाची।

अस्तु, भक्ति-काल की मुख्य विशेषता यह थी कि ध्यान और धारणा वाली भक्ति तथा अंतरतम की आनन्दधारा का सम्बन्ध लौकिक भावनाओं और इन्द्रियगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति से जुड़ गया। ज्ञान-समन्वित-भक्ति के स्थान पर पागल बना देने वाली उग्रभक्ति का प्रचार हुआ। ज्ञान तथा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



ज्ञान-समन्वित-भक्ति को सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों के उपयुक्त बताकर कलियुग में इसी उग्र भक्ति की उपयोगिता सिद्ध की गई।[1]

भक्तों के अनुभव और आनन्द जब अलौकिक और इन्द्रियातीत की कोटि से नीचे उतारकर लौकिक और इन्द्रियगम्य अनुभूतियों और संवेदनाओं की कोटि में ला दिए गए तब ज्ञान-समन्वित-भक्ति के स्थान पर लौकिक भावनाओं ने भक्ति का स्वरूप धारण किया और अनुभव की तीव्रता की दृष्टि से इन भावनाओं को भी मुख्य पाँच स्वरूप दिया गया जो साहित्य में शांत, दास्य, सख्य, वत्सल और मधुर के नाम से प्रसिद्ध हैं। अनुभव की अतिशय तीव्रता और भावों के उत्कट आवेग के कारण मधुर-भाव की भक्ति ही सर्वोत्कृष्ट कोटि की भक्ति मानी गई और उनके अभाव में शांत भाव की भक्ति निम्नतम कोटि की भक्ति हुई। दास्य, सख्य, वत्सल भाव की भक्ति इन दोनों के बीच में प्रतिष्ठित हुई। इतना ही नहीं, मधुर भाव की इस उग्रतम भक्ति-भावना में भी स्वकीय और परकीय भाव की दो साधनाओं के बीच परकीय भावना के उग्रतर होने के कारण कुछ भक्ति-सम्प्रदायों में परकीय साधना का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया गया।

भावना की दृष्टि से उग्रतम और तीव्रतम होने पर भी परकीय साधना में उच्छृङ्खलता और असंयम को बहुत अधिक प्रश्रय मिला और भक्तों में ज्यों-ज्यों भक्ति-भावना शिथिल पड़ती गई त्यों-त्यों इस साधना ने समाज में उच्छृङ्खलता, असंयम और अश्लीलता का बीज बोया। मीराँ की भक्ति-भावना इस उग्रतम और तीव्रतम कोटि की होती हुई भी उसकी अभिव्यक्ति में उच्छृङ्खलता और असंयम नाममात्र को भी नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनका शृंगार-वर्णन अत्यंत

---

१. स्वामी रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों में एक स्थान पर कहा गया है, "यदि तुम्हें पागल ही बनना है तो सांसारिक वस्तुओं के पीछे पागल मत बनो, वरन् ईश्वर की भक्ति प्रेम के पीछे पागल बनो। इस कलियुग में उग्रभक्ति ही अधिक उपयोगी है और संयमित भक्ति की अपेक्षा शीघ्र फलदायक होती है। ईश्वर प्राप्ति का दुर्गम गढ़ इस उग्र भक्ति से ही तोड़ना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



शुद्ध और पवित्र है। परन्तु इसमें कोई विशेषता नहीं है क्योंकि तुलसीदास की भक्ति-भावना देखते हुए उनके शृंगार-वर्णन में शुद्धता और पवित्रता न होना अवश्य आश्चर्यजनक होता। तुलसीदास दास्यभाव की भक्ति करते थे जो लौकिक भक्ति-भावना की कोटि में बहुत निम्नश्रेणी की मानी गई है। वहाँ उच्छृंखलता और असंयम के लिए कोई स्थान ही नहीं वरन् वहाँ तो मर्यादा की रक्षा का ही महत्व अधिक है। एक सेवक अपने स्वामी और स्वामिनी के शृंगार-वर्णन में शुद्धता और पवित्रता के अतिरिक्त और देख ही क्या सकता है। परन्तु मीराँ ने माधुर्यभाव की तीव्रतम भक्ति-भावना में भी जो पवित्रता, गम्भीरता और स्वाभाविक सरलता प्रदर्शित की है वह वास्तव में अद्भुत और अभूतपूर्व है।

मीराँ के पदों में मधुर भाव की पवित्र, गम्भीर और सहज अभिव्यक्ति के मुख्य दो कारण हैं। पहला तो उनका गिरधर नागर के प्रति मधुर भाव मिलन के अभाव में अत्यंत गम्भीर हो उठा है। लौकिक शृंगार की सभी अपवित्रता और उच्छृंखलता विरह की पवित्र दिव्य ज्वाला में जल कर भस्म हो गई है। विरह से प्रारम्भ कर विरह में ही समाप्त होने वाली उनकी गम्भीर प्रेम-साधना में तपाए हुए सोने के समान वह निर्मल तेजस्विता है कि उसके सामने पड़ने वालों की लौकिक शृंगार भावना भी शुद्ध हो जाती है। यह बात नहीं है कि मीराँ केवल विरह की आँच में ही जलती रहती हैं; उन्हें मिलन की आशा का आनंद और संयोग का काल्पनिक सुख भी मिल जाता है, परन्तु उस क्षणिक आशा और मिलन-सुख में भी साधक के पवित्र भावों के ही दर्शन होते हैं। सावन में बादलों की मंद ध्वनि में उन्हें अपने प्रियतम के आने की आवाज़ सुनाई पड़ती है और वे उत्सुक आशा से प्रतीक्षा करने लगती हैं :

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज ॥
महल चढ़ि चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी, कब आवै महराज ॥

अथवा, झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सावन में उमँग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की ॥
उमड़-घुमड़ चहुँदिस आयो, दामण दमक झर लावन की ॥

और एक दिन मिलन भी हो जाता है ( सम्भवतः कल्पना में ), परंतु वह मिलन इतनी कठोर साधना के पश्चात् होता है कि उस संयोग से केवल शुद्ध आनंद की ही उपलब्धि होती है, शारीरिक वासना और लौकिक शृंगार भावना का उसमें लेश भी नहीं रह पाता। उस अलग प्रवास में रहने वाले के आने से मीराँ सुखी अवश्य है :

म्हाँरा ओलगिया घर आया जी ॥टेक॥
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया, जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणद आया जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणासूं ; भौ का दरद मिटाया, जी।
चन्द कूँ देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी काया, जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।

[ मी० पदा० पद सं० १४९ ]

परन्तु इस सुख में तनिक भी उन्माद नहीं, उत्ताप नहीं ! इतना प्रशांत और पूर्ण आनंद बहुत बड़ी साधना के उपरांत ही मिलता है और मीराँ की प्रेम साधना वास्तव में बहुत बड़ी है।

दूसरा कारण है, मीराँ ने परम्परागत नायिका-भेद के लक्षण ग्रंथों की अवहेलना कर शुद्ध और सरल नारी हृदय से प्रेम की अभिव्यक्ति की है। यह मान और अभिसार अथवा उन्माद और प्रलाप वाला कृत्रिम प्रेम नहीं है, वरन् साधना और आत्म समर्पण की भावना से पूर्ण एक सरल नारी का सहज प्रेम है। अपने विरह-निवेदन में वे विरह की परम्परागत एकादश दशाओं का वर्णन नहीं करती वरन् अपनी सहज व्यथाका ही वर्णन करती हैं। रीतिकाल की विरहिणी नायिकाएँ जब प्रेम-पत्र लिखने का प्रयत्न करती हैं, तब विरह के शब्दों की आँच से ही कागज जलकर भस्म हो जाता है, स्याही सूख जाती है और कलम का डंक जल उठता है। इसी प्रकार सूरदास की गोपिकाएँ भी जब भगवान् कृष्ण के पास पत्र भेजने का प्रयत्न करती हैं तो आसुओं की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जलधारा से सभी अक्षर एकाकार होकर फैल जाते हैं, परन्तु मीराँ जब अपने प्रिय गिरधर नागर को पत्र लिखने बैठती हैं, तब न तो स्याही सूखती है, न कलम की डंक जलती है, न कागज भस्म होता है, न भीगता ही है। फिर भी उनसे पत्र लिखते नहीं बनता। वे कहती हैं :

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखही न जाई ॥ टेक ॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रहो घराई।
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहे झराई।
किस विध चरण कमल में गहिहौं, सबहि अंग थराई।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, सबही दुख बिसराई ॥

[ मी० पदा० पद सं० ७७ ]

उस लज्जाशीला से बात ही कहते नहीं बनता। यद्यपि विरह ने उसे इतनी व्यथा दी है फिर भी अपने प्रियतम को वह क्या लिखे, कैसे लिखे, यह समझ ही में नहीं आता। कितनी स्वाभाविक बात मीराँ ने कितने सरल ढग से कह दी है। जायसी की विरहिणी की भाँति वह अपने प्रियतम के पास इस प्रकार का संदेश नहीं भेजती कि :

पिय सों कहेहु सँदेसड़ा, हे पंछी हे काग।
सो धनि विरहे जरि मुई, तेहि क धुआँ मोहिं लाग।

क्योंकि इस संदेश में असम्भव अतिशयोक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है वह तो यदि कोई ले जा सके तो अपनी सच्ची व्यथा का ही संदेश भेजेगी कि :

रमैया, बिन नींद न आवै।
नींद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आँच डुलावै ॥ टेक ॥
बिन पिया जोत मँदिर अँधियारो, दीपक दया न आवै।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी, जगत रैण बिहावै।
पिया कब रे घर आवै।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै।
धुँमट घटा ऊलर होइ आई, दामिन दमक डरावै।
नैन झर लावै।



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, वेदन कूण बुतावै।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जड़ी घास लावै।

विरह-निवेदन प्रायः हिन्दी के सभी कवियों की रचनाओं में मिलता है, परन्तु विरह की सच्ची अनुभूति की इस प्रकार सरलतम और स्पष्टतम शब्दों में अभिव्यञ्जना मीराँ के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं मिल सकती।

## ३

वैष्णव भक्तों की माधुर्य भाव की भक्ति और उनके प्रणय-प्रेम की अभिव्यक्ति को विद्वानों ने रहस्यवाद के अंतर्गत माना है। मीराँ की भक्ति भावना भी माधुर्य भाव की थी, अस्तु, मीराँ की प्रेम-साधना भी रहस्यवाद के अंतर्गत आती है। वह भगवान् अनेक और अनगिनत जीव नारियों का एक ही पुरुष है, इस परम सत्य को हृदयंगम कर मीराँ ने जिस प्रणयानुभूति और विरह-व्याकुलता की अभिव्यक्ति की वह रहस्यवाद की भावना से ओतप्रोत अवश्य है, परन्तु उनकी अभिव्यञ्जना की शैली इतनी सरल, स्पष्ट और स्वाभाविक है कि सहसा मीराँ को रहस्यवादी कवि कहना अनुचित जान पड़ता है, क्योंकि शैली की दृष्टि से मीराँ अन्य सगुण भक्तों से अधिक भिन्न नहीं हैं। मीराँ की प्रणयानुभूति इतनी उच्च कोटि की थी, साथ ही इतनी सरल और गम्भीर थी कि उसमें रूपक तथा सांकेतिक प्रयोगों के लिए कोई स्थान ही नहीं था। सांकेतिक शब्दों का रूढ़ प्रयोग करके ही कितने कवि रहस्यवादी प्रसिद्ध होगए हैं (जायसी इसी प्रकार के रहस्यवादी हैं) परन्तु जहाँ लौकिक और अलौकिक का सम्मिलन होता है, प्रेम की उस चरम स्थिति तक केवल कुछ थोड़े से कवि और भक्त पहुँच पाए हैं और मीराँ उन थोड़े से भक्तों और कवियों में प्रमुख थीं। भगवान् की ओर उन्मुख मीराँ का सच्चा प्रेम अर्जुन के लक्ष्य[1] की भाँति केवल उनके गिरधर नागरको देख पाता था किसी

१ एक बार द्रोणाचार्य ने कौरव और पांडवों की लक्ष्यवेध-परीक्षा ली। एक वृक्ष पर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



दूसरी ओर देखने और संकेत करने की उसे न आवश्यकता ही थी न अवकाश ही था; इसी कारण मीराँ की अनुभूति में वह गम्भीरता और तीव्रता है, वह सरलता और स्पष्टता है जो किसी दूसरे रहस्यवादी कवि में ढूँढ़े भी नहीं मिलती।

मीराँ का रहस्यवाद साम्प्रदायिक नहीं, वह स्वाभाविक था; रूढ़िगत नहीं स्वच्छंद था। मीराँ नारी थीं, उन्हें अपने नारीत्व का पूर्ण ज्ञान और अभिमान था; उन्होंने अन्य वैष्णव भक्तों के समान जीव नारी का अभिनय नहीं किया, वरन स्वयं अपने गिरधर नागर की दासी बन गईं और अपनी सच्ची प्रेम-साधना की स्पष्ट और उत्कृष्ट व्यंजना की। मीराँ की सरल और स्पष्ट शैली का यही रहस्य है।

---

, पत्तों के बीच एक कृत्रिम पक्षी के आँखों का निशाना बनाना था। द्रोण के प्रश्न करने पर युधिष्ठिर आदि अन्य राजकुमारों ने बतलाया कि वे पक्षी की आंखों के अतिरिक्त पक्षी, पत्ते वृक्ष इत्यादि भी देख रहे हैं और वे सभी इस परीक्षा में असफल रहे। अंत में अर्जुन की बारी आई। प्रश्न करने पर उन्होंने बतलाया कि वे न तो वृक्ष देखते हैं, न वृक्ष के पत्ते, और पक्षी की आंख के अतिरिक्त उसके अन्य अंग भी उन्हें दिखलाई नहीं पड़ रहे थे। अर्जुन ने ही लक्ष्य वेध किया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# पाँचवाँ अध्याय

## मीराँ की काव्य-कला

कविता की कितनी परिभाषाएँ प्रचलित हैं, परन्तु उसकी एक सर्वसम्मत परिभाषा, उसकी समुचित मीमांसा और स्पष्ट व्याख्या आज भी न हो सकी। सच तो यह है कि कविता की स्पष्ट व्याख्या करना सम्भव ही नहीं है। जो वस्तु जितनी ही व्यापक और महत् होती है, वह उतनी ही सूक्ष्म और अव्यक्त भी होती है, और इसीलिए उसकी न कोई परिभाषा हो सकती है, न उसका कोई नियम हो सकता है और न कोई नियामक ही। ईश्वर, धर्म और काव्य ऐसी ही वस्तुएँ हैं। अनादि काल से इन तीनों के सम्बंध में कितने ही प्रकार के चिन्तन होते रहे हैं, परन्तु आज भी वे उसी प्रकार अस्पष्ट हैं, जैसे पहले थीं, और अंत में यही कहना पड़ता है :

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
तो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च। केनोपनिषद्

अर्थात् मैं न तो यह मानता हूँ कि उसको ( ब्रह्म, धर्म, काव्य को ) अच्छी तरह जान गया और न यही समझता हूँ कि उसे नहीं जानता। इसलिए मैं उसे जानता हूँ और नहीं भी जानता। अस्तु, कविता की स्पष्ट व्याख्या नहीं हो सकती, फिर भी सौभाग्य से कविता को सभी पहचान लेते हैं, यद्यपि सबकी पहचान एक दूसरे से भिन्न हो सकती है। कोई उसको उसके छंदों के आवरण से पहचानता है तो कोई उसके अंत्यानुप्रास से; कोई उसको संगीत से पहचानता है तो कोई उसकी गति से; कोई उसके अलंकारों पर मुग्ध है, तो कोई उसकी ध्वनि और व्यंजना पर; कोई उसके भावों की गहराई नापता है तो कोई अनुभूति की व्यापकता; कोई उसमें आनंद की खोज करता है तो कोई सांत्वना की। कविता में ये सभी तत्व थोड़ी-बहुत मात्रा में अवश्य मिल जाते हैं, परन्तु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



कविता इतने ही तक सीमित नहीं है, वह इनसे भी परे है। वह क्या है, इसे आज तक किसी ने न जाना।

कविता की अभिव्यक्ति शब्दों में चित्र और संगीत के द्वारा होती है। बुद्धि-कल्पना द्वारा कवि अपने वर्ण्य वस्तु का चित्र उपस्थित करता है और भावना द्वारा संगीत की सृष्टि किया करता है। चित्र-कल्पना कविता के प्रबंध-काव्य-रूप ( महाकाव्य और खंडकाव्य ) के लिए अत्यंत उपयोगी हैं और संगीत की सृष्टि गीति-काव्य-रूप के लिये अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। यह सत्य है कि महाकाव्य और खंडकाव्यों में भी संगीत की सृष्टि होनी ही चाहिए, परन्तु वहाँ चित्र-कल्पना ही प्रधान है, संगीत नहीं और इसी प्रकार गीति-काव्यों में भी चित्र-कल्पना अवश्य होनी चाहिए, परंतु प्रधानता संगीत-सृष्टि ही की हुआ करती है। युग-युग में जब कभी कवियों की चित्र-कल्पना सजीव हो उठती है तभी महाकाव्यों और अपूर्व खंडकाव्यों से साहित्य का भंडार भरता है, और जब बुद्धि-कल्पना के स्थान पर भावना का स्रोत उमड़ पड़ता है तब आनंद और वेदना की धारा संगीत के रूप में प्रवाहित होने लगती है और फलतः गीति-काव्यों की सृष्टि हुआ करती है। कालिदास, अश्वघोष तथा भारवि इत्यादि का युग बुद्धि-कल्पना का युग था, शब्द-चित्रों का युग था, महाकाव्य और खंडकाव्यों का युग था, और जयदेव, विद्यापति, सूर और मीराँ का युग भावना और अनुभूति का युग था, संगीत का युग था और था गीति काव्यों का युग।

ऐसा जान पड़ता है कि देश में जब चित्रकला का विकास होता है, तब साहित्य में भी चित्र-कल्पना प्रधान हो उठती है और जब देश में संगीत की उन्नति होने लगती है तब साहित्य में भी गीति काव्यों की प्रधानता दिखाई पड़ती है। भारतीय चित्रकला के इतिहास में ईसा की सातवीं और आठवीं शताब्दी में सर्वोत्कृष्ट चित्रों की सृष्टि हुई थी और इस कला का विकास लग-भग तीन चार सौ वर्षों से हो रहा था। ठीक यही समय संस्कृत के महाकाव्यों की रचना का भी है। संगीत के पुनरुत्थान के साथ-ही-साथ गीति-काव्यों की प्रधानता होने लगी। मध्यकालीन उत्तर भारत में लगभग पंद्रहवीं और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सोलहवीं शताब्दी में संगीत का पुनरुत्थान हुआ था। जौनपुर के इब्राहीम शाह शर्की तथा उसके पौत्र हुसेनशाह शर्की के दरबार में भारतीय संगीत की विशेष उन्नति हुई थी। इसी शर्की सल्तनत में कड़ा मानिकपूर के शासक मलिक सुलतान शाह के पुत्र मलिक बहादुरशाह ने एक बृहत् संगीत सम्मेलन का आयोजन कर 'संगीत-शिरोमणि' नामक ग्रन्थ ( रचना काल १४२८ ) प्रस्तुत कराया था। इसी समय मेवाड़ के स्वनामधन्य महाराणा कुम्भा भी बड़ा संगीत प्रेमी, गायक और वीणा-वादन में निपुण प्रसिद्ध हुआ है। उसने संगीत-शास्त्र पर 'संगीत राज' नामक ग्रन्थ की रचना की, साथ ही साथ संगीत रत्नाकर' तथा 'गीतगोविन्द' की टीका के रूप में उपस्थित की। लगभग उसी समय निधुवन के स्वामी हरिदास, जो प्रसिद्ध गायक तानसेन के संगीत-गुरु प्रसिद्ध हैं, तथा बैजू बावरे भी भारतीय संगीत की धारा बहा रहे थे। मुग़ल सम्राट् अकबर भी भारतीय संगीत का प्रेमी था और उसके दरबार में तानसेन, रामदास और उसके पुत्र सूरदास जैसे प्रसिद्ध गायक रहते थे। वल्लभाचार्य के शिष्यों में कितने ही प्रसिद्ध गायक थे। संगीत के उस पुनरुत्थान काल में हिन्दी साहित्य में भी संगीत-प्रधान गीति-काव्य शैली का खूब प्रचार हुआ। हृदय के धर्म भक्ति की अनुभूतियों और भावनाओं की सरस धारा प्रवाहित करने के लिए यह काव्य-रूप अत्यन्त उपयोगी भी प्रमाणित हुआ। फलतः उस काल में, जिसे साहित्य में भक्तिकाल की संज्ञा दी गई है, हिन्दी कविता में गीति-काव्य-शैली का बोलबाला था।

गीति-काव्य संगीत-प्रधान तो होता ही है, उसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी अंतर्मुखी प्रवृत्ति है। साधारण गीति-काव्यों में यह अंतर्मुखी वृत्ति कवि के व्यक्तिगत अथवा उसके नायक और नायिका के सुख और दुःख, आशा और निराशा, भय और पीड़ा, क्रोध और घृणा इत्यादि को सहज और संगीतमय अभिव्यक्ति करती है। परंतु कुछ गीत ऐसे भी होते हैं जहाँ कवि की अंतर्मुखी वृत्ति उसकी व्यक्तिगत अथवा काल्पनिक नायक-नायिका की लौकिक भावनाओं और अनुभूतियों का अतिक्रमण कर अलौकिक के क्षेत्र में जा पहुँचती है; हाँ, लौकिक और साधारण सुख दुःख के स्थान पर अलौकिक और असाधारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आनंद और वेदना की अभिव्यक्ति होती है; जहाँ साधारण संयोग और वियोग की अनुभूतियों के स्थान पर स्वयं भगवान से संयोग और वियोग की साधनामयी अनुभूतियों की अभिव्यंजना होती है। इस प्रकार के गीतिओं को महत् गीति-काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें भगवान् के लिए पागल हृदय की अस्पष्ट और अव्यक्त ध्वनि सुनाई पड़ती है।

हिन्दी साहित्य में महत् गीति-काव्य की रचना करने वालों में मीराँ अद्वितीय हैं। पद-रचना में सूरदास और मैथिल-कोकिल विद्यापति ने भी अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है, परंतु सीधे हृदय पर चोट करने वाली रचना मीराँ के ही कंठ से निःसृत हुई थी। जहाँ सूर और विद्यापति के पदों में ब्रज की गोपियों अथवा राधा के सम्भोग और वियोग की आनंद और वेदनामयी अनुभूतियों की सरस अभिव्यक्ति हुई है वहाँ मीराँ के पदों में स्वयं मीराँ की विरह-व्यथा साकार हो उठी है। सूरदास के मुक्तक पदों और गीतियों के भीतर एक कथा की धारा अंतःसलिला सरस्वती की भाँति बहती रहती है और उसी प्रसिद्ध कथा के सहारे उन पदों का सौन्दर्य परखा जा सकता है, इसी प्रकार विद्यापति के पदों में भी नायिका-भेद की परम्परा का सहारा लिए बिना उनकी रमणीयता भली प्रकार स्पष्ट नहीं हो पाती, परंतु मीराँ के पदों में कथा की न कोई अंतर्धारा है, न किसी साहित्यिक परम्परा का सहारा है; वहाँ मीराँ की भावना सीधे मीराँ के हृदय से, उनके अंतर्तम प्रदेश से, निकलती है; इसीलिए उसका प्रभाव भी अधिक पड़ता है। मीराँ के पदों में सरलता है, स्पष्टता है और है सीधापन ( directness )। परंतु उन पदों की सबसे बड़ी विशेषता है स्वच्छंदता। वह युग-युग से चलती आ रही काव्य-परम्परा से स्वच्छंद है; भाषा और छंद, भाव और अनुभूति किसी का भी आडम्बर मीराँ के पदों में नहीं है। परंतु मीराँ की स्वच्छंदता कोरा अनर्गलवाद नहीं है, वह एक निर्झरिणी की निर्मल धारा की स्वच्छंदता है, जिसमें एक राग है, एक अदम्य आवेग है, बंधनों की सीमा का उल्लंघन करने का एक उत्साह है; परंतु जिसमें असंयम नहीं, अश्लीलता नहीं, विद्रोह की भावना नहीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



मीराँ की भक्ति-भावना की स्वच्छंदता ने, जिसमें लोक-लाज नहीं था, समाज का भय नहीं था, काव्य-कला में भी इसी प्रकार की स्वच्छंदता ढूँढ ली थी। भाषा, छंद और काव्य-परम्परा सब में मीराँ ने एक स्वाभाविक स्वच्छंदता प्रदर्शित की है।

१

**भाषा**—मीराँबाई के पद वर्तमान रूप में तीन भिन्न भाषाओं में मिलते हैं। कुछ पदों की भाषा पूर्ण रूप से गुजराती है और कुछ की शुद्ध ब्रज भाषा है, शेष पद राजस्थानी भाषा में पाये जाते हैं, जिनमें ब्रजभाषा का भी पुट मिला हुआ है। पता नहीं मीराँ के मूल पद किस एक अथवा किन-किन भिन्न भाषाओं में लिखे गए थे, परंतु इस समय उनमें स्पष्ट तीन भाषाएँ हैं। ऐसा भी सम्भव है कि सचमुच ही तीन भिन्न भाषाओं में लिखी गई हों क्योंकि मीराँ गुजरात में काफी दिनों रही थीं, ब्रज में भी उन्होंने लगभग पाँच छः वर्ष बिताए थे और राजस्थान में तो वे पैदा हुई थीं, वहीं ब्याही गई थीं और जीवन का अधिकांश भाग वहीं बिताया था।

ब्रजभाषा तथा ब्रज-मिश्रित राजस्थानी भाषा में विरचित मीराँ के पदों में भाषा का आडम्बर तनिक भी नहीं है। जायसी, कबीर तथा अन्य संत कवियों की भाँति मीराँबाई भी परिष्कृत तथा पूर्ण साहित्यिक भाषा नहीं लिख सकती थीं, ऐसी बात नहीं है, वरन् इसके विपरीत कुछ पदों में मीराँ ने ऐसी परिष्कृत तथा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है जो पिछले खेवे के कवियों के लिए आदर्श मानी जा सकती है। उदाहरण के लिए देखिए :

मन रे परसि हरि के चरण ॥ टेक ॥
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण पहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण।
त्याहिद [मी० पदा० पद० सं० १]

अथवा छाँड़ो लँगर मोरी बहियाँ गहो ना।
मैं तो नार पराये वर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो ना।
वृंदावन की कुन्ज गलिन में, रीत छोड़ अनरीत करो ना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरो ना।

[ मी० पदा० पद सं० १७२ ]

और भी, सखी मेरी नींद नसानी हो।

पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैन बिहानी हो॥
सब सखियन मिलि सीख दई मन एक न मानी हो।
बिन देख्याँ कल नाहिं, जिय ऐसी ठानी हो॥
अंगि अंगि व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अंतर वेदन विरह की वह पीर न जानी हो॥
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, सुध बुध बिसरानी हो॥

[ मी० पदा० पद सं० ८७ ]

इसी प्रकार और भी कितने पद हैं जो सरलता और स्पष्टता, मधुरता और कोमलता में हिन्दी साहित्य में अतुल हैं। सूर और मतिराम, रसखान और घनानन्द की व्रजभाषा भी इतनी मधुर और स्पष्ट नहीं है। परन्तु मीराँ की भाषा का स्वच्छंद प्रवाह देखना हो तो देखिए :

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल।
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछै जावत भूल।
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चँमेली के फूल।
मीराँ कहै प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल॥

[ मी० पदा० पद सं० ५८ ]

अथवा मेरे परम सनेही राम की नित ओलूँड़ी आवे॥ टेक॥
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कुछ न सुहावै।
आवण कह गए अजहु न आए, जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसण की आस रमइया, निस दिन चितवत जावै॥

[ मी० शब्दा० पृ० सं० १२-१३ ]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



और भी, प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय ।। टेक ।।
छोड़ गया बिस्वास सँगाती, प्रेम की बाती बराय ।।
अथवा नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात, किस विध होइ परभात ।।

प्रीतड़ी और दुखड़ा, ओलूँड़ी और जिवड़ो, रमइया और सँगाती, नेहड़ी और नींदलड़ी इत्यादि शब्दों में कितनी स्वाभाविक रमणीयता है। अनगढ़ और बीहड़ चट्टानों पर उछलती हुई जल की धारा जिस प्रकार मधुर संगीत उत्पन्न करती है, मीराँ की स्वाभाविक भाव-धारा भी इन अनगढ़ और स्वाभाविक शब्दों में उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है। यह स्वच्छंद संगीत-धारा केवल मीराँ के ही पदों में मिल सकती है जो यमक और अनुप्रास के आडम्बर से उत्पन्न हुई संगीत से कम मधुर नहीं है। यह सत्य है कि :

ललित-लवंग-लता-परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर-निकर-करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे।

की कोमल-कांत-पदावली अत्यंत मधुर है ; परंतु मीराँबाई की :

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरस बिना मोहिं कुछ न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पड़ी विरह की पाशड़ियाँ।
अब तो बेगि दया करि साहब, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसैं, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
राति दिवस यह आरति मेरे; कब हरि राखै पासड़ियाँ।
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, पूरो मन की आसड़ियाँ।

[ मी० पदा० पद सं० १०८ ]

स्वच्छंद वेग से बहने वाली पदावली भी सच्चे रसिकों के लिए कम मधुर और आकर्षक नहीं है।

मीराँ की भाषा में अलंकरण नहीं, सजावट नहीं, वरन् एक स्वच्छंद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



आवेग है। भाव की स्वच्छंदता के साथ स्वाभाविकता, परिष्कार के साथ अनलंकरण मीराँ की भाषा की विशेषता है।

छंद—मीराँ के पद पिंगल के नियमों को दृष्टि में रखकर नहीं लिखे गए थे। उन पदों की गति और संगीत में मीराँ के सरल और सुंदर भावों का स्वाभाविक संगीत मिलता है, जिसका कोई नियम नहीं। भावों के अनुरूप ही छंद की गति बदलती रहती है। देखिए :

करणाँ सुणि स्याम मेरी,
मैं तो होइ रही चेरी तेरी।
दरसण कारण भई बावरी विरह विथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी दूँगी नग्र बिच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी॥
अंग भभूत गले मिग छाला, यो तन भसम भरूँरी।
अजहुँ न मिल्या राम अबिनासी, बन बन बीच फिरूँरी।
रोऊँ नित हेरी हेरी॥ [मी० पदा० पद सं० ९४]

इसका पहला चरण १३ मात्रा का है, दूसरा १८ मात्रा का, तीसरा और चौथा १६+१२ मात्रा का और पाँचवाँ १६मात्रा का है। इस प्रकार स्वच्छंद भाव से छंदों की गति बदलती रहती है। भाषा की भाँति मीराँ के छंद भी स्वच्छंद हैं।

कला—मीराँ के पद नायिका भेद तथा अन्य साहित्यिक परम्पराओं से ही मुक्त नहीं हैं, उनमें ध्वनि और व्यंजना, रीति और वक्रोक्ति, गुण और अलंकार की काव्य परम्परा का भी निर्वाह नहीं है। यों तो कुछ पदों में रूपक,[1]

१. रूपक (अ) अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आणंद फल होई।
(ब) भौसागर अति जोर कहिए, अनँत ऊँडी धार।
राम नाम का बांध बेड़ा, उतर परली पार॥
ज्ञान चोसर मन्डी चोहटे, सरत पासा सार।
या दुनियां में रची बाजी, जीत भावै हार॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की झलक अवश्य मिल जाएगी और प्रसाद गुण तो मीराँ की कविता का प्राण ही है, परंतु ये सभी विशेषताएँ सुन्दर काव्यों में साधारण रूप से पाए जाते हैं, कला के रूप में मीराँ में इनका लेश मात्र भी नहीं है। और ये जो थोड़े अलंकार मिल भी जाते हैं वे प्रायः अपवाद-स्वरूप ही हैं, क्योंकि इनकी संख्या नगण्य है। सच तो यह है कि जहाँ हृदय की अत्यंत मार्मिक वेदनाओं और गूढ़ भावों को खोल कर रखना पड़ता है, वहाँ गुण और अलंकार, ध्वनि और वक्रोक्ति आदि काव्य-कला की परम्पराओं की कोई उपयोगिता ही नहीं, कोई सार्थकता ही नहीं; वहाँ तो कविता-सुंदरी अपने सरल स्वाभाविक वेश में ही अत्यंत आकर्षक जान पड़ती है।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ही काव्य में कला की प्रधानता स्वीकार की गई है। इसी कारण प्रायः सभी कवियों में कला का गहरा रंग पाया जाता है। परंतु मीराँ की कविता में इसका अपवाद मिलता है। अंधे कवि सूरदास ने विरहिणी राधिका के अंगों की श्रीहीनता दिखलाने के लिए काव्य-परम्परा का सहारा लेकर लिखा है :

तब ते इन सबहिन सचु पायो।
जब ते हरि संदेस तिहारो सुनत ताँबरो आयो।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
ऊँचे बैठि विहंग सभा बिच, कोकिल मंगल गायो।
निकसि कंदरा ते केहरिहू माथे पूँछ हिलायो।
बन गृह तें गजराज निकसि कै अँग अँग गर्व जनायो॥

१. उपमा-(अ) नातो नाम को मोसू तनक न तोड़ियो जाइ।
पानां ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहें पिंड रोग।

(ब) प्यारे दरसण दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय॥
जल बिन कँवल, चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिन सजनी।

२. उत्प्रेक्षा जबसे मोहिं नंदनंदन दृष्टि पड्यो माई।
तबसे परलोक लोक, कछू न सुहाई।
कुंडल की झलक अलक, कपोलन पर छाई।
मनों मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



और जानकी के विरह में राम के मुख से तुलसीदास ने भी इसी प्रकार की कला की करामात प्रकट किया है जब कि राम कहते हैं :—

कुंदकली, दाड़िम, दामिनी, कमल, सरद ससि, अहि भामिनी।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू, हरषे सकल पाइ जनु राजू॥

इस 'रूपकातिशयोक्ति, अलंकार का आनंद सहृदय चाहे जितना पा लें परन्तु राधिका तथा राम के विरह की अभिव्यक्ति इसमें नहीं के बराबर हुई है। मीराँ को अपनी विरह व्यथा प्रकट करनी है, इसीलिए उन्हें श्रीफल, दाड़िम और दामिनी तथा व्याल, कोकिल और केहरि की प्रसन्नता की ओर देखने का अवकाश भी नहीं मिलता ; उन्हें तो अपनी ही विरह-व्यथा से छुट्टी नहीं मिलती। वे कितने सरल ढंग से अपनी विरह-व्यथा कह डालती हैं :—

मैं विरहणि बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
विरहणि बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पोवै॥
इक विरहणि हम ऐसी देखी अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिण गिण रैण बिहानी सुखकी घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मिल के बिछुड़ न जावै।

इस स्पष्ट सरलता में जो सौन्दर्य है वह अलंकार के आडम्बर में कहाँ। इसी प्रकार नंदनंदन से अधिक जड़ बादल की प्रीति देखकर रूप-रस की प्यासी गोपियाँ उपालम्भ-स्वरूप कह उठती हैं :—

बरु ये बदराऊ बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नँदनंदन गरजि गगनघन छाए।
सुनियत हैं परदेस बसत सखि सेवक सदा पराए।
चातक कुल की पीर जानि कै, तेउ तहाँ ते धाए।
तृण किए हरित, हरषि बेली मिलि दादुर मृतक जिवाए॥

परन्तु मीराँ का ध्यान तो अपने गिरधर नागर पर ही अटल है, उन्हें बादल और चंद्र, मोर और पपीहा आदि की ओर देखने की इच्छा भी नहीं, वे भला

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



अपने गिरधर के प्रेम की उनसे तुलना क्यों करने चलीं। वे तो सारे संसार को भूल कर एक उसी नागर की रट लगाए हुए हैं:

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अंखियाँ राती।
× × × × × ×
पल पल तेरा रूप निहारूँ निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित राती॥

और इसीलिए प्रकृति के नियमानुसार बसंत ऋतु में मधुवन को विकसित और पल्लवित देखकर सूर की गोपियों की भाँति वे इस प्रकार कोसती नहीं कि:

मधुवन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे।

उनके अंतर में तो श्याम-विरह के अतिरिक्त और कोई भाव ही नहीं है। ईर्ष्या और द्वेष मोह और मत्सर क्रोध और घृणा सब इस विरह की बाढ़ में बह गया है:

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री॥टेक॥
तलफत तलफत कल न परत है, विरह बाण उर लागी री।
निसदिन पंथ निहारूं पीव को, पलक न पल भरि लागी री।
पीव पीव मैं रटूँ रात दिन दूजी सुधि बुधि भागी री।
विरह भवंग मेरो डस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री॥

मीराँ के विरह की यह एकनिष्ठा कला का उपहास सा करती है; क्योंकि साधारण व्यथा और साधारण प्रेम तो कला की करामात से, वक्रोक्ति और व्यंजना से, उपमा और उत्प्रेक्षा से रमणीय, चमत्कारपूर्ण और आकर्षक बनाये जा सकते हैं, परंतु जहाँ प्रेम का अपार सागर है, जहाँ उमड़ती हुई वेदना की एक बाढ़ है, वहाँ कला और कौशल की पहुँच भी नहीं हो पाती। जहाँ अंतरतम की पीड़ा और आनंद की अनुभूति की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है, वहाँ रस, अलंकार ध्वनि और व्यंजना, रीति और वक्रोक्ति आदि सबका अतिक्रमण कर सरल और स्पष्टतम शब्दों का ही सहारा लेना पड़ता है। मीराँ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



ने अपनी उसी अंतरतम की व्यथा का सरलतम और स्पष्टतम शब्दों में अभिव्यक्ति की। यह कला से अतीत और काव्य-परम्परा से स्वच्छंद महत् गीति-काव्य की रचना मीराँ की अपनी विशेषता है।

मीराँ के पदों में सबसे अद्भुत और अपूर्व कौशल यही है कि उनकी समस्त रचना कला के आडम्बर से रहित है। जैसा कि गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मुंशी ने लिखा है, कलाविहीनता ही मीराँ की सबसे बड़ी कला है। वक्रोक्ति जीवितकार ने कवियों की रुचि और प्रवृत्ति-भेद के अनुसार तीन मार्गों की कल्पना की है। कुछ कवि सौकुमार्य प्रवृत्ति के होते हैं और उनका मार्ग सुकुमार मार्ग[1] कहा गया है; कुछ कवि वैचित्र्य से रुचि रखते हैं और विचित्र मार्ग[2] के पथिक हैं; कुछ इन दोनों से मध्यम रुचि के होते हैं और अपनी कविता में इन दोनों का समन्वय करते हैं। हिन्दी-साहित्य के अधिकांश कवि विचित्र मार्ग के पथिक हैं। रीतिकालीन साहित्य में वक्रोक्ति और वैचित्र्य का ही प्राधान्य है। भक्तिकाल के अधिकांश कवियों ने मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया है। सुकुमार मार्ग के पथिक कवि हिन्दी में बहुत ही कम हैं और इन कवियों में मीराँबाई सर्वाग्रणी हैं।

---

१ सुकुमार मार्ग की रचनाओं में कवि कौशल आहार्य (कृत्रिम) नहीं होता वरन् स्वाभाविक होता है। उनमें स्वभावोक्ति को प्रधानता दी जाती है और जो अन्य अलंकार आते हैं वे पृथक् प्रयत्न के परिणाम न होकर बिना प्रयास ही आ जाते हैं और अत्यंत स्वाभाविक होते हैं। इन रचनाओं में रस का प्राधान्य रहता है, रस-ध्वनि अधिक पाए जाते हैं तथा माधुर्य, प्रसाद, लावण्य (शब्दों का सुंदर चयन) और आभिजात्य (smoothness) आदि गुणों की विशेषता होती है।

२. विचित्र मार्ग में वक्रोक्ति और वैचित्र्य का प्राधान्य होता है; कृत्रिमता और प्रयास अधिक होता है। सभी अलंकार लाने का प्रयत्न और पृथक् प्रयास पाया जाता है। इसमें अलंकार का प्राधान्य रहता है और अलंकार-ध्वनि अधिक पाए जाते हैं। इसमें माधुर्य, अशिथिल वाक्य विन्यास, प्रसाद, दीर्घ और लघु स्वरों का सुंदर क्रम और सामंजस्य तथा ओज होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

# उपसंहार

हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में मीराँबाई का स्थान बहुत ऊँचा है, परंतु हमारे कितने ही लब्धप्रतिष्ठ समालोचक मीराँ को कवि मानने को तैयार नहीं, वे तो उन्हें केवल एक प्रसिद्ध भक्त मात्र स्वीकार करते हैं। 'मीरा की प्रेम साधना' नामक आलोचना ग्रंथ के रचयिता महोदय भी मीराँ को कवि नहीं मानते क्योंकि एक स्थान पर वे लिखते हैं "मीरा न कबीर की भाँति ज्ञानी ही थी, न जायसी की तरह कवि ही। वह एक मात्र प्रेम की पुजारिन थी।"[१] जो कबीर को ज्ञानी और जायसी को कवि समझते हैं उनके लिए तो मीराँबाई सचमुच ही न तो ज्ञानी हैं न कवि, क्योंकि उन्होंने न तो कबीर की भाँति अटपटी बानी' कही और न जायसी की भाँति असम्भव अतिशयोक्तियों की भरमार की। मीराँ ज्ञानी नहीं थीं, इसे मानने में किसी को विशेष आपत्ति नहीं होगी, परंतु कवि तो मीराँ के समान हिन्दी में बहुत ही कम हुए हैं। यदि वाग्विदग्धता और उक्ति-वैचित्र्य ही काव्य का मानदंड है तो जायसी अवश्य कवि हैं और मीराँ जायसी की तरह कवि नहीं; परन्तु कविता इससे कहीं महत् और ऊँची वस्तु है। जो कविता में कला की खोज करते हैं, जो अलंकारों और वक्रोक्तियों को ही कविता मानते हैं, उन्हें मीराँ के पदों से निराशा ही होगी; परंतु जो कविता को कला से परे, अलंकारों के आडम्बर से अतीत, हृदय की स्वाभाविक और सरस अनुभूतियों को सरलतम और स्पष्टतम अभिव्यंजना के रूप में समझते हैं, उन्हें मीराँ के पदों में उच्चतम कोटि की कविता के दर्शन होंगे। मीराँ के पदों में जो अद्भुत और अपूर्व कला उनकी कलाविहीनता है उसे हमारे विज्ञ समालोचकों ने अत्यंत तुच्छ समझ रक्खा है। कला की अभ्यस्त आँखों को कलाविहीनता का स्वाभाविक सौन्दर्य जैसे आकृष्ट नहीं कर पाता; उसी प्रकार काव्य-कला की परम्परा के

---

१. मीरा की प्रेम साधना—प्रथम संस्करण पृ० सं० ८३।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



सहृदय पंडितों को मीराँ की कलाविहीनता नहीं जँची। इसी कारण मीराँ का हिन्दी साहित्य में जो उचित स्थान है वह आज भी उन्हें नहीं मिला।

विरह-निवेदन में मीराँ के पद अद्वितीय हैं। 'दरद दिवाणी' मीराँ ने विरह की जैसी सच्ची और उत्कृष्ट व्यंजना की है, वैसी व्यंजना अन्य किसी भी कवि की वाणी में नहीं हुई। मीराँ ने अपनी विरहाग्नि की ज्वाला का प्रतिबिम्ब अपने चारों ओर फैले विस्तृत प्रकृति में नहीं देखा; चंद्र की शीतल किरणों ने, शीतल कुंजों में मंद-मंद बहने वाली सुगंधित वायु ने, मुसुकाते हुए कुसुमों ने उनकी विरहानल को उद्दीप्त नहीं किया; सावन की रातें उन्हें बावन के डग के समान नहीं जान पड़ीं, पलास के 'निरधूम अंगार' तुल्य डालों पर चढ़कर जल मरने की इच्छा उन्हें कभी नहीं हुई; सारांश यह कि मीराँ को अपनी विरह-व्यथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त होकर नहीं दिखाई पड़ी। इसका कारण यह नहीं था कि मीराँ का विरह अत्यंत साधारण कोटि का था, वरन् इसका एक मात्र कारण यही था कि वह अत्यन्त गम्भीर था। जिस विरह में बाह्य-वेदना ही अधिक होती है अंतर्वेदना कम, उसी में विरही प्रकृति को, सारे संसार को, ज्वालामय और भस्म होता हुआ देखता है, और स्वयं भी नित्य जलता रहता है। उसी विरह के कारण जायसी की विरहिणी चीत्कार कर उठती है :

लागिउँ जरै, जरै जस भारू, फिरि फिरि भूंजेसि, तजिउँ न बारू।
सरवर हिया घटत निति जाई, टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया, करहु पिय टेका, दीठि दँवगरा मेरवहु एका॥

उसी विरह में पद्माकर की विरहिणी गोपियाँ भगवान् कृष्ण को संदेश भेजती हैं :

ऊधो यह सूधो सो संदेसो कहि दीजो जाइ,
ब्रज में हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज हैं।
किंसुक, गुलाब, कचनार औ अनारन के,
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं॥

और उसी विरह में सूरदास की विरहिणी गोपियाँ बिलखती हैं :



For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजै।
तब ये लता लगत अति सीतल, अब भईं बिषम ज्वाल की पुंजै।

परन्तु जहाँ विरह बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी होता है, जहाँ वह अतल गम्भीर महासागर की भाँति ऊपर से शांत किंतु भीतर ही भीतर आन्दोलित होता रहता है; वहाँ बाह्य वेदना नहीं होती अतर्वेदना भीतर ही भीतर अपना काम करती है; वहाँ शरीर भाड़ के समान नहीं जलता, कुंजें ज्वाला की पुंजें नहीं बनतीं, किंशुक, गुलाब, कचनार की डालों पर अंगारों के पुंज नहीं डोलते; वहाँ तो मीराँ की भाँति

अंगि अगि व्याकुल भई सुख पिय पिय बानी हो।
अंतर बेदन बिरह की वह पीर न जानी हो।

का अनुभव होता है और विरहिणी केवल इतना ही कहती है कि :—

प्यारे दरसण दीजो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।
जब बिन कँवल, चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
व्याकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, बिरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुख सूं कथत न आवै बैणा;
कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिलकर तपत बुझाय।

यह वेदना अनिर्वचनीय है। मीराँ का विरह अंतर्मुखी था, बहिर्मुखी नहीं, इसी कारण उनका विरह निवेदन अन्य हिन्दी कवियों के साधारण विरह वर्णन से बहुत भिन्न है। सम्भवतः इसीलिये हिन्दी के कितने ही समालोचकों ने मीराँ का विरह वर्णन पसंद नहीं किया। 'मीरा की प्रेम-साधना' के रचयिता की सम्मति है कि "हिन्दी साहित्य में विरह के सर्वोत्कृष्ट कवि जायसी हुए१।" इसका अर्थ यह हुआ कि जायसी का विरह-वर्णन सूरदास, विद्यापति और मीराँ से भी उत्कृष्ट है। यहाँ भी ऐसा जान पड़ता है कि जायसी की वाग्विदग्धता और अतिशयोक्तिपूर्ण उक्तियों से प्रभावित होकर विज्ञ समालोचक ने ऐसी बात लिख डाली है, नहीं तो कहाँ मीराँ और कहाँ जायसी।

१ 'मीरा की प्रेम-साधना' पृष्ठ सं० ७१

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir



हिन्दी साहित्य के कवि-गायकों में मीराँ का स्थान उच्चतम है। गीति-काव्य की रचना करने वालों में हिन्दी के तीन कवि—विद्यापति, सूर और मीराँ—बहुत सफल हुए हैं। इनमें सूरदास में अद्भुत व्यापकता है तो मीराँबाई में अपूर्व गम्भीरता; विद्यापति के पदों में अनुपम माधुर्य भरा है तो मीराँ के पद सहज स्पष्टता और स्वच्छंदता में अद्वितीय हैं। मीराँ की रचनाएँ परिमाण में अधिक नहीं हैं, परंतु जो थोड़ी रचनाएँ प्राप्त हैं, गेयता और गम्भीरता, सरलता और स्पष्टता में वे अतुलनीय हैं।

मीराँ के स्फटिक तुल्य स्वच्छ हृदय पर भक्ति-युग की सभी विशुद्ध भावनाओं का प्रतिबिम्ब पड़ा था। कबीर और रैदास की निर्गुण ज्ञान भक्ति से लेकर चैतन्य और चंडीदास के राधा-भाव तक की सभी विशुद्ध भक्ति भावनाएँ मीराँ की कविता में एक साथ ही मिल जाती हैं; साथ ही कबीर का अटपटापन, तुलसीदास की साम्प्रदायिक संकीर्णता और जयदेव तथा विद्यापति की परम्परागत अश्लील व्यंजनाओं का उसमें लेश भी नहीं है। यह सत्य है कि मीराँ में वह पांडित्य नहीं, वह विद्या-बुद्धि नहीं, वह साहित्यिक शैली नहीं, परम्परा से प्राप्त वह कला की भावना नहीं जो सूरदास, तुलसीदास और विद्यापति की कविताओं में मिलती है, परंतु जहाँ तक विशुद्ध कवि हृदय और नैसर्गिक प्रतिभा का प्रश्न है, वहाँ मीराँ इन कवियों से किसी प्रकार हलकी नहीं ठहरतीं। मीराँ का साहित्यिक मूल्य सूर और तुलसी के समकक्ष कदापि नहीं है क्योंकि उन्होंने सूरसागर की भाँति अथाह और असीम रस-सागर का निर्माण नहीं किया और न 'रामचरित मानस' की भाँति निष्कलुष पवित्र मानस की रचना की, परंतु गिरिशृंग से उतरने वाली निर्मल निर्झरिणी के स्वच्छंद प्रवाह और कलकल शब्द में यदि कोई सौन्दर्य है तो मीराँ के पदों में हमें वही सौन्दर्य मिलता है।

समाप्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

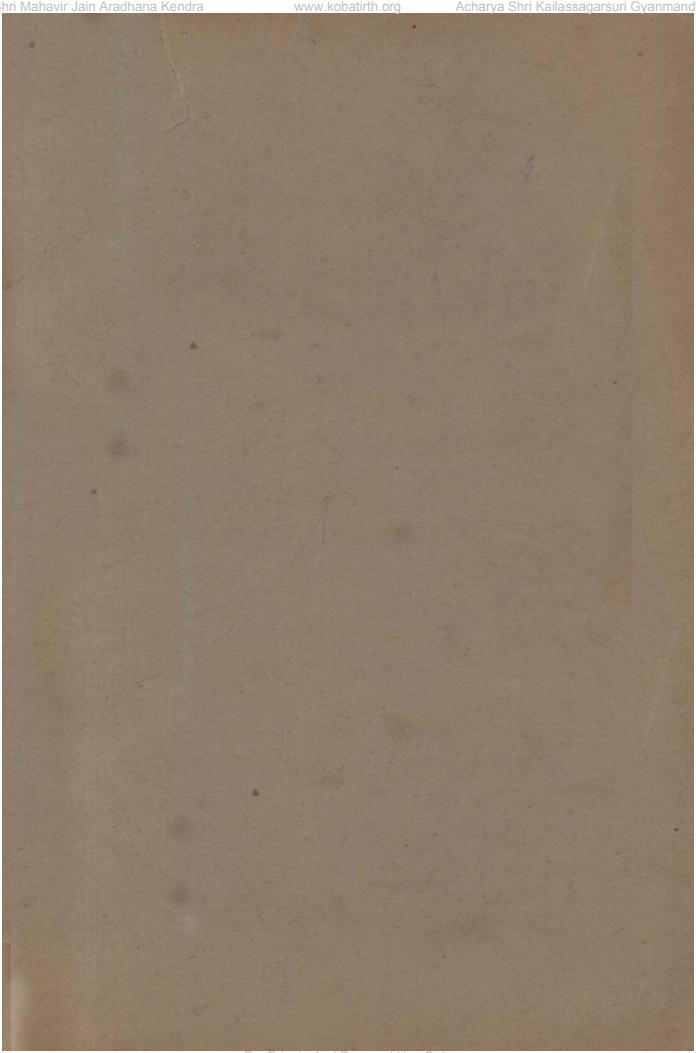

For Private And Personal Use Only